GUPTA CLASSES

UPPCS/Other State PCS Exam

सामान्य अध्ययन

(पर्यावरण)

अध्याय 1

पर्यावरण
Environment

अर्थ एवं परिभाषा

प्रत्येक जीव का अपना एक विशिष्ट परिवेश होता है, जिसके साथ वह लगातार पारस्परिक क्रिया करता रहता है, जिसमें वह अपना जीवन निर्वाह करता है और जिसके प्रति वह पूरी तरह से अनुकूलित रहता है। दूसरे शब्दों में, पर्यावरण भौतिक, जैविक तथा रासायनिक दशाओं का योग है, जो पृथ्वी पर विद्यमान जीवन के सभी स्वरूपों को प्रभावित करता है। समग्र रूप में देखें, तो पर्यावरण जीवित पदार्थों के चारों ओर फैला वह स्थान है, जिसके साथ उनका सहजीवी संबंध होता है।

वस्तुत: पर्यावरण अध्ययन का सम्बन्ध हर उस प्रश्न से है, जो एक जीवित प्राणी को प्रभावित करता है। यह मूलत: एक बहुशास्त्रीय (Multidisciplinary) दृष्टिकोण है, जो हमारे प्राकृतिक जगत और मानव पर उसके प्रभाव को समग्रता में समझना सिखाता है। हमारे पर्यावरण में दैनिक जीवन के लिए आवश्यक अनेक प्रकार की वस्तुएँ और खनिज शामिल हैं और साथ में जलवायु एवं सौर ऊर्जा भी। ये प्रकृति के अजैविक (Abiotic) घटक हैं, जबकि प्रकृति के जैविक घटकों में सूक्ष्म जीवाणुओं समेत पेड़-पौधे और जीव-जन्तु शामिल हैं। पेड़-पौधे और जीव-जन्तु ऐसे विभिन्न जीवों के समुदायों के रूप में ही जीवित रह सकते हैं, जो अपने आवास में आपस में घनिष्ठ संबंध रखते हैं और जिन्हें विशेष अजैव दशाओं की आवश्यकता होती है।

प्रकृति के अजैव पक्षों और विशिष्ट जीवों की आपसी अभिक्रिया से ही विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों (इकोसिस्टम) का निर्माण होता है। इनमें से अनेक सजीवों का उपयोग हमारे खाद्य संसाधनों के रूप में होता है।

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के 'Environner' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है- घिरा हुआ। अंतरसरकारी संगठन ओईसीडी (OECD) के अनुसार-पर्यावरण से तात्पर्य एक जीव के जीवन विकास और अस्तित्व को प्रभावित करने वाली सभी बाहरी स्थितियों की समग्रता से है। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम-1986 के अनुसार, पर्यावरण हमारे चारों तरफ घिरे भौतिक एवं जैविक दशाओं और उनके साथ अंत:क्रियाओं का समुच्चय है।

मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की घोषणा के अनुसार- "पर्यावरण वायु, भूमि एवं जल का मिश्रण है जो विशेष रूप से प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र का प्रतिनिधित्व करता है।"

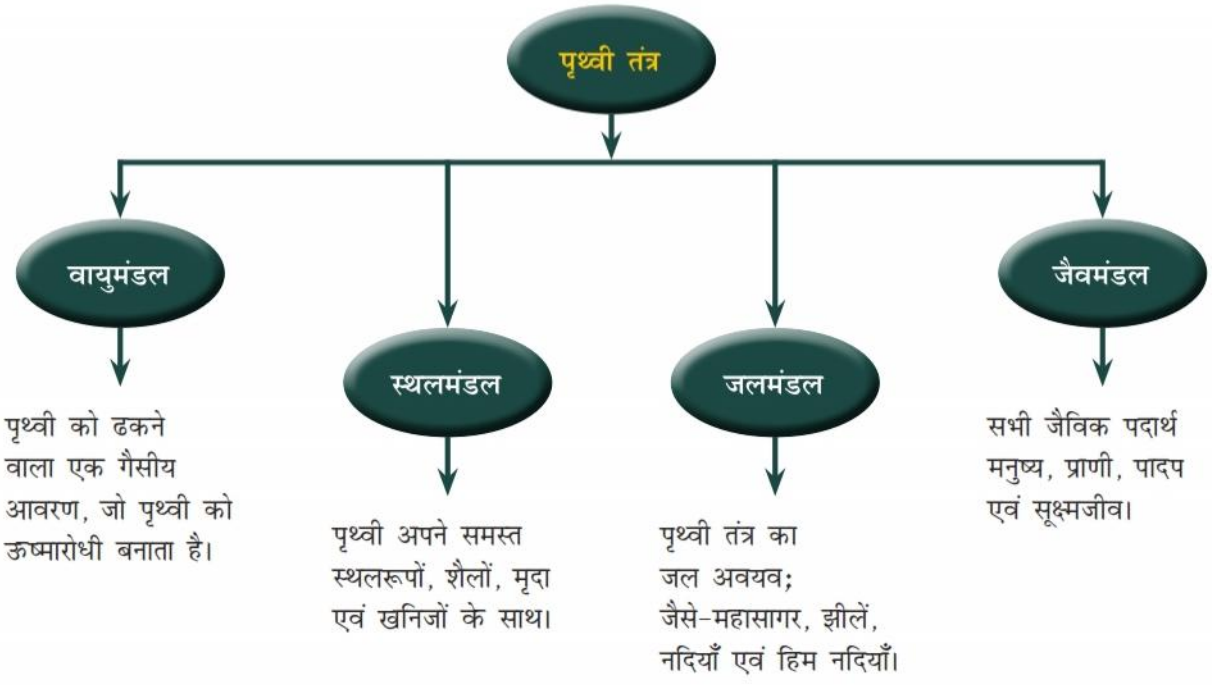

पर्यावरण के तत्व

पृथ्वी सौरमंडल का अनोखा ग्रह है क्योंकि केवल इसी पर विविध प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। पृथ्वी की इस विशिष्टता के पीछे कई कारक काम करते हैं। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारक है- सूर्य से पृथ्वी की दूरी। सूर्य के निकटवर्ती ग्रह शुक्र और बुध की भाँति पृथ्वी न तो बहुत अधिक गर्म है और न ही बृहस्पति जैसे सूर्य से दूर के ग्रहों के समान अत्यंत ठंडी।

पृथ्वी के चारों ओर फैले वायुमंडल में ऑक्सीजन पाई जाती है। ऑक्सीजन सभी प्राणियों के जीवन के लिए अनिवार्य है। वायुमंडल पृथ्वी के धरातल को ताप की परम सीमाओं से बचाता है अर्थात् वायुमंडल के कारण पृथ्वी पर दिन और रात तथा गर्मियों और सर्दियों के तापमान में बहुत ज्यादा अंतर नहीं होता है। तापमान की इसी विशिष्टता के कारण पृथ्वी पर विशाल मात्रा में जल पाया जाता है। पृथ्वी पर तापमान में होने वाले परिवर्तनों के कारण जल ठोस और गैसीय अवस्थाओं में भी मिलता है। तापमान के परिवर्तन से ही जल का संचरण जलमंडल, स्थलमंडल और वायुमंडल के बीच होता रहता है। पृथ्वी पर जल के कारण ही विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों और मनुष्य समेत अनेक जीव-जन्तुओं की विविध जातियों का विकास तथा वृद्धि संभव हो सकी है।

किसी प्रदेश विशेष में पाए जाने वाले पेड़-पौधे और जीव-जन्तु उस प्रदेश के भौतिक पर्यावरण पर आश्रित होते हैं। स्मरणीय है कि भौतिक पर्यावरण तथा जैव पर्यावरण एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। भौतिक पर्यावरण के परिवर्तन से जैविक पर्यावरण भी परिवर्तित हो जाता है। भौतिक तथा जैव पर्यावरण के तत्वों में सदैव कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता रहता है।

पर्यावरण की संरचना

पर्यावरण उन प्राकृतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दशाओं को प्रदर्शित करता है, जो एक मानव अथवा मानव समुदाय को प्रभावित करती हैं, चूंकि पर्यावरण एक भौतिक तथा जैविक संकल्पना है, अत: इसमें अजैविक एवं जैविक दोनों संघटकों को सम्मिलित किया जाता है। पर्यावरण की इस आधारभूत संरचना के आधार पर पर्यावरण की विभिन्न दशाओं का निर्धारण किया जाता है। पर्यावरण की जैविक संरचना के अन्तर्गत वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं सहित मानव को शामिल किया जाता है। जैविक पर्यावरण को दो रूपों में विभक्त किया जाता है-

- वानस्पतिक पर्यावरण (Flora)
- जन्तु पर्यावरण (Founa)

वानस्पतिक पर्यावरण के तहत घास भूमि से लेकर सघन वनों, उद्योगों, पर्वतीय वृक्षों, मैंग्रोव वनों तथा समुद्री घासों आदि को शामिल किया जाता है, जबकि जन्तु पर्यावरण के अन्तर्गत समस्त जीवधारियों; यथा-सूक्ष्म जीव (Microbe) से लेकर प्रत्येक स्तनधारी जीव सरीसृप को शामिल किया जाता है। स्मरणीय है कि सभी जीवधारी अपने विभिन्न स्तरीय सामाजिक समूह एवं संगठन की रचना भी करते हैं जिसके फलस्वरूप एक सामाजिक पर्यावरण का निर्माण होता है। सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत विभिन्न जीवधारी अपने जीवन निर्वाह एवं अस्तित्व तथा संवर्द्धन के लिए भौतिक पर्यावरण से पदार्थों को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं।

पर्यावरण के घटक

पर्यावरण एक जटिल तंत्र है जिसमें जीव-जन्तुओं के विकास हेतु आवश्यक दशाएं उपलब्ध होती हैं। हालांकि, पर्यावरण एक व्यापक स्वरूप को ग्रहण किए हुए है, फिर भी विभिन्न घटकों के आधार पर इसे निम्नलिखित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

स्थलमंडल (Lithosphere)

यह पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है जिसे स्थलमंडल अथवा भूपृष्ठ कहते हैं। स्थलमंडल का निर्माण विभिन्न चट्टानों अथवा पदार्थों से हुआ है। भूपर्पटी के नीचे मेंटल है जो पृथ्वी के लगभग 29% भाग पर फैला हुआ है। स्थलमंडल पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। इस पर विभिन्न जलवायविक विसंगतियों के चलते अलग-अलग स्थलाकृतियों तथा पर्यावरणीय प्रदेशों का सृजन हुआ है। इन पर्यावरण प्रदेशों (मरुस्थल, शीतमरुस्थल, वर्षावन तथा तटीय प्रदेश) में विभिन्न स्थानिक वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओं का विकास होता है। स्मरणीय है कि भूपर्पटी में ही विवर्तनिक प्लेटें पाई जाती हैं।

जलमंडल (Hydrosphere)

पर्यावरणीय घटक के रूप में जलमंडल का विशेष महत्त्व है। पृथ्वी पर पाये जाने वाले जलीय भाग को जलमंडल के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। इसमें महासागर, सागर, झीलें, तालाब, नदियाँ आदि सम्मिलित हैं। जलमंडल पृथ्वी के 71% भाग पर विस्तृत रूप में फैला हुआ है। जलमंडल में विभिन्न आकार तथा रंग की वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं के आश्रय व विकास हेतु अनुकूल दशाएं हैं। पृथ्वी पर समस्त जल का 97.5% जल खारा है और केवल 2.5% जल पीने योग्य है। ताजे पानी का लगभग 30% भौम जल के रूप में तथा 68.5% हिमनदों के रूप में मिलता है। नदियों, जलाशयों व झीलों में समस्त ताजे जल का केवल 6.3% पाया जाता है। इन जलाशयों में अनेक प्रकार के जीवों के विकास हेतु अनुकूल पर्यावरणीय दशाएं विद्यमान हैं।

वायुमंडल (Atmosphere)

वायुमंडल गैसों का वह आवरण है जिसने पृथ्वी को चारों ओर से घेरा हुआ है। सौरमंडल के अब तक ज्ञात ग्रहों में पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है जिस पर वायुमंडल उपस्थित है। वायुमंडल की उपस्थिति पृथ्वी पर जीवन के उद्विकास हेतु अनुकूल वातावरण निर्मित करती है। वायुमंडल जैव व अजैव कारकों के लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वायुमंडल की संरचना व संघटन जीवों व वनस्पतियों की संपूर्ण क्रियाओं को प्रभावित करता है।

वायुमंडल के संघटन में नाइट्रोजन (78.08%), ऑक्सीजन (20.95%), ऑर्गन (0.93%), कार्बन डाइ-ऑक्साइड (0.03%) तथा अति अल्पमात्रा में हाइड्रोजन, हीलियम, ओजोन, मीथेन, क्रिप्टॉन, जिनॉन आदि हैं। वायुमंडल में बड़ी मात्रा में जलवाष्प तथा धूल कण भी मौजूद हैं वायुमंडल में उपस्थित गैसें, पौधों के प्रकाश-संश्लेषण, ग्रीनहाउस प्रभाव तथा जीव व वनस्पतियों को जीवित रखने के लिए आवश्यक स्रोत हैं।

यह वायुमंडल विभिन्न स्तरों के रूप में पाया जाता है। स्थल के निकट वायुमंडल की सबसे निचली परत को क्षोभमंडल (troposphere) कहते हैं। यह भूमध्य रेखा से 16 कि.मी. तथा ध्रुवों पर 7 किमी. की ऊँचाई तक विस्तृत है। इसके ऊपर समताप मंडल (Stratosphere) है जो 50 कि.मी. की ऊँचाई तक विस्तृत है। इसमें ओजोन परत भी है। इसके ऊपर मध्यमंडल (Mesosphere) है जो 85 कि.मी. की ऊँचाई तक विस्तृत है। मध्यमंडल के ऊपर तापमंडल है, यह 690 कि.मी. की ऊँचाई तक विस्तृत है। तापमंडल के ऊपर (650 से 10,000 कि.मी.) वाह्य मंडल स्थित है।

जैवमंडल (Biosphere)

जीवमंडल या जैवमंडल में पृथ्वी के समस्त प्रदेश सम्मिलित हैं, जहाँ पर जीवन पाया जाता है।

जैवमंडल सामान्य रूप से पृथ्वी की सतह के चारों ओर व्याप्त एक आवरण होता है जिसके अंतर्गत वनस्पति तथा पशु जीवन बिना किसी रक्षक साधन के संभव होता है। पृथ्वी के धरातल पर अनेक जीव निवास करते हैं जिनमें से कुछ धरातल से थोड़ी ऊँचाई पर और कुछ धरातल से थोड़ी गहराई पर रहते हैं, वहीं कुछ जीव जल में निवास करते हैं। इन जीवों के निवास क्षेत्र को पर्यावरणीय दशाएँ नियंत्रित करती हैं। ऐसे विशाल या लघु क्षेत्र ही, जिसमें जीव निवास करते हैं, जैवमंडल का निर्माण करते हैं। इसका विस्तार संपूर्ण पृथ्वी पर भी हो सकता है और किसी लघु आकार के क्षेत्र में भी। जैवमंडल की संरचना विभिन्न विशिष्टताओं से युक्त है क्योंकि जैवमंडल से बाहर जीवन संभव नहीं होता है। यही कारण है कि पृथ्वी पर विविध प्रकार के जंतुओं एवं वनस्पतियों का अस्तित्व संभव हुआ।

जैवमंडल के गठन, संरचना तथा प्रभाविता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए वायुमंडल में निहित विभिन्न परतों का अध्ययन आवश्यक है-

जैवमंडल के लिए आवश्यक दशाएँ

जल

पृथ्वी की अद्वितीय विशेषताओं में से एक जल अपनी तीनों अवस्थाओं-ठोस, तरल और गैस अवस्था में पृथ्वी पर उपस्थित है। जीवन की अधिकांश जैव रासायनिकी जल या H_2O के विशिष्ट लक्षणों पर ही केंद्रित रहती है, साथ ही जल तापमान-परिवर्तन का प्रतिरोधी है अर्थात् यह ऊष्मा को धीरे-धीरे अवशोषित करता है और धीरे-धीरे ही छोड़ता है। इसकी तरल से गैस में परिवर्तन की क्षमता इसे जैवमंडल में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता के साथ गति करने के लायक बनाती है। वायुमंडल में इसकी उपस्थिति पृथ्वी के धरातल से होने वाली विकिरण ऊष्मा के क्षय को मंद कर देती है, जिससे जैवमंडल को अपेक्षाकृत स्थिर तापमान पर रहने में सहायता मिलती है।

Note

1. शीतनिष्क्रियता (Hibernation) एक ऐसी स्थिति है जिसमें जन्तुओं के शरीर का ताप, श्वसन, गति व हृदय गति तथा उपापचय (Metabolic) दर अत्यन्त कम हो जाती है। इस स्थिति को कृन्तक (Rodents), भालू (Bears), चमगादड़ (Bats) तीनों में देखा जा सकता है।
2. लाइकेन दो पूर्णतया भिन्न वनस्पतियों से बना एक द्वैध पादप है। इनमें एक शैवाल तथा दूसरा कवक होता है। परंतु इन दोनों में इतना निकट का साहचर्य होता है कि इनसे निर्मित लाइकेन एक ही पौधा प्रतीत होता है।
3. UV-A, (320-400nm), UV-B (280-320nm) और UV-C (100-280nm) ये तीन प्रकार के पराबैंगनी विकिरण होते हैं। इन तीनों में UV-C जीवों के लिये अत्यधिक हानिकारक होता है।

वायुमंडल

वायु का आवरण, जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे है, वायुमंडल कहलाता है। पर्यावरण के चार प्रमुख तत्वों में से वायुमंडल सबसे अधिक गतिशील है। रासायनिक रूप से, यह गैसों का एक संरक्षक आवरण है, जिसमें 79% नाइट्रोजन, 20% ऑक्सीजन, 0.03% कार्बनडाइ-ऑक्साइड एवं अनेक गैसें शामिल हैं, जिनमें से कुछ विरल गैसें भी हैं। पृथ्वी के वायुमंडल का अधिकाँश भाग उसके धरातल से चिपका या लगा हुआ है, जो 10-12 km की ऊँचाई से अधिक नहीं है। वायुमंडल सूर्य से आने वाली खतरनाक पराबैंगनी विकिरण को धरातल तक पहुँचने से रोककर एक अद्वितीय सुरक्षा चक्र का कार्य करता है, अन्यथा पृथ्वी पर जीवन असुरक्षित हो जाता। साथ ही साथ यह एक भीमकाय 'ऊष्मा कुण्ड' के रूप में कार्य करता है, जिसमें धरातल के निकट की ऊष्मा संरक्षित रहती है। सूर्य से प्राप्त होने वाली कुल ऊर्जा सामान्य रूप से पृथ्वी से अंतरिक्ष में वापस जाने वाली कुल ऊर्जा की मात्रा के बराबर होती है, परंतु यह संतुलन अब मानव गतिविधियों के कारण भंग हो रहा है, जिसका कारण वायुमंडल में अतिरिक्त कार्बनडाइ-ऑक्साइड (CO_2) का समावेश है।

जलवायविक दशाएँ

पृथ्वी के धरातल के ऊपर और नीचे जैवमंडल के विस्तार का सीमांकन जीवन के लिए सहायक अजैविक पर्यावरणीय दशाओं के द्वारा होता है। अजैविक या भौतिक पर्यावरण का तात्पर्य समस्त अजैविक पदार्थों से है, जैसे- भूमि, जल, वायु आदि। ध्यातव्य है कि ऊष्मा और जल की व्यापक गतिशीलता के फलस्वरूप पृथ्वी पर जलवायु की उत्पत्ति होती है। यह गतिशीलता कुछ क्षेत्रों में अन्य की अपेक्षा अधिक है। उदाहरणार्थ, भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में वर्ष भर सौर ऊर्जा की काफी मात्रा समान रूप से पहुँचती है, जबकि यह उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों में एक मौसम से दूसरे में काफी अंतर दर्शाती है, जिसका कारण पृथ्वी का अपने अक्ष पर झुकाव है। धरातल से बहुत अधिक ऊँचाई या गहराई पर वायु या जल अथवा किसी भी अजैविक पर्यावरणीय घटक की अनुपस्थिति जीवन के अस्तित्व को प्रतिबंधित करती है। यही जीवमंडल की सीमा का निर्धारण भी करती है। जीवमंडल के अजैविक अवयव हैं- स्थलमंडल का ऊपरी हिस्सा, वायुमंडल का निचला हिस्सा और जलमंडल।

सौर ऊर्जा

पृथ्वी पर सभी प्रकार की ऊर्जा का मूल स्रोत सौर ऊर्जा है। यही प्रकाश-संश्लेषण के लिए आधारभूत ऊर्जा प्रदान करता है, परंतु इसकी जीवन के लिए महत्वूर्ण भूमिकाएँ भी हैं। आगत विकिरण का सिर्फ आधा भाग ही पृथ्वी के धरातल तक पहुँच पाता है, जबकि इसका 30% भाग अंतरिक्ष में परावर्तित एवं 20% भाग वायुमंडल द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। धरातल पर पहुँची 50% सौर ऊर्जा को स्थल एवं जलमंडल अवशोषित कर लेते हैं और फिर वहाँ से यह पार्थिव विकिरण के रूप में वायुमंडल में विकिरित कर दिया जाता है।

यद्यपि पृथ्वी के धरातल तक पहुँची ऊर्जा अंतत: अंतरिक्ष में पलायित कर दी जाती है, परंतु इसी क्रम में इस ऊर्जा का जैवमंडल द्वारा व्यापक उपयोग कर लिया जाता है।

जैसा कि आप जानते हैं कि पृथ्वी पर अवस्थित समस्त जीवों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य ही ऊर्जा का एकमात्र स्रोत है। पौधों के लिए प्रकाश की तरंग दैर्ध्य (Wave length), तीव्रता (Intensity) और अवधि अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रकाश द्वारा पौधों में प्रकाश संश्लेषण, वृद्धि तथा प्रजनन प्रभावित होते हैं, प्रकाश की पुष्पन, बीज अंकुरण और पादप वृद्धि आदि क्रियाओं में मुख्य भूमिका होती है।

पारिस्थितिकी संगठन के विभिन्न स्तर तथा उनकी परिभाषाएँ

जीव या व्यष्टि (Individual)

जीव, पारिस्थितिकीय अध्ययन की मूलभूत इकाई है। जीवों के स्तर पर हम आकृति, शारीरिक क्रिया तथा परस्पर व्यवहार को एवं वातावरणीय पारिस्थितिकीय अवस्था के अनुकूलन के संबंध को समझने का प्रयास करते हैं। पृथ्वी पर पायी जाने वाली लाखों प्रजातियों को चार प्रमुख वर्गों में बांटा जाता है-

- प्रोकैरियोटिक (Prokaryotes)- मुख्यत: जीवाणु
- कवक (Fungi)
- प्रोटिस्टा (Protista)
- प्राणी (Animals)

प्रोकैरियोटिक को सबसे प्राचीन जीव माना जाता है क्योंकि उनकी कोशिका में केन्द्रक (Nucleus) और अन्य संरचनात्मक लक्षणों का अभाव होता है। अन्य तीन जगत के जीवों को यूकैरियोटिक कहते हैं।

समष्टि या जनसंख्या

समष्टि का अर्थ है किसी विशिष्ट स्थान में पाए जाने वाले एक ही प्रजाति के ऐसे जीवों का समूह, जो स्वतंत्र रूप से अन्त: प्रजनन कर सकते हैं। किसी भी समष्टि या जनसंख्या की अपनी विशेषताएँ होती हैं जो समष्टि की रचना करने वाले जीवों से भिन्न होती हैं। इनका अपना एक लिंगानुपात और आयु संरचना होती है, जिसका अर्थ है- समष्टि में मादा से नर का अनुपात और विभिन्न आयु-वर्ग, जिनमें समष्टि को विभाजित किया जा सकता है।

समष्टि या जनसंख्या के कई विशिष्ट गुण हैं। इसे मापने के लिए इसके घनत्व, जीवों के स्थानिक वितरण तथा वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में अध्ययन करते हैं। एक समष्टि की विशेषता के प्रमुख तत्व उसका घनत्व, जन्म दर, मृत्यु दर तथा आयु-वितरण हैं।

जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि का तात्पर्य किसी निश्चित क्षेत्र में सीमित या असीमित संसाधनों की उपलब्धता में किसी प्रजाति के सदस्यों (व्यक्तियों) की संख्या में होने वाली वृद्धि से है। उदाहरण के रूप में मान लिया जाए कि एक समष्टि जिसका प्रारंभिक आकार No है, एक समय अंतराल t में बढ़कर Nt हो जाती है, तो समष्टि की आकृति में परिवर्तन को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है:-

$Nt = No + B + I - D - E$

जहाँ No = परिवर्तन के प्रारंभ में समष्टि का आकार

B = जन्मदर (Birth Rate)

I = अप्रवास (Immigration)

D = मृत्युदर (Death Rate)

E = उत्प्रवास (Emigration)

जन्मदर

एक समयावधि के दौरान जनसंख्या में व्यक्तियों (जीवों) की संख्या में वृद्धि जन्म दर कहलाती है।

मृत्युदर

किसी जनसंख्या में मृत्यु के द्वारा व्यक्तियों की संख्या में कमी मृत्युदर कहलाती है। एक समयावधि में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या को मृत्युदर कहते हैं।

एक समय अवधि के दौरान मापी गई जनसंख्या वृद्धि को 'वृद्धि दर' कहते हैं। वृद्धि दर या तो गुणात्मक या ऋणात्मक हो सकती है। जनसंख्या वृद्धि दर का योग उसके समूह के अभिलक्षण के आधार पर किया जा सकता है; जैसे- वृद्धि दर, मृत्यु दर, उम्र अनुपात तथा आनुवांशिक बनावट आदि।

समष्टि या जनसंख्या वृद्धि संसाधनों की उपलब्धता से प्रभावित होती है, जोकि अन्त: जातीय संबंधों से गहरे तौर पर अंतर्सम्बन्धित है। संसाधनों की उपलब्धता के दृष्टिकोण से जनसंख्या वृद्धि को दो रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है:-

- सीमित संसाधनों में जनसंख्या वृद्धि
- असीमित संसाधनों में जनसंख्या वृद्धि

सीमित संसाधनों में जनसंख्या वृद्धि

आवास तथा भोज्य पदार्थ जैसे मुख्य संसाधनों के सीमित होने की अवस्था में किसी पर्यावास में एक निश्चित आकार से ज्यादा बड़ी जनसंख्या सुव्यवस्थित ढंग से नहीं रह सकती। जनसंख्या का आकार एक सीमा से अधिक हो जाने पर संसाधनों की कमी, मृत्यु दर में बढ़ोत्तरी तथा जन्मदर में कमी जैसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। ऐसी स्थिति में समष्टि घनत्व घटकर उस अंतिम सीमा तक पहुँच जाता है, जहाँ तक पर्यावास में उपलब्ध संसाधन अनुमति देते हैं।

Note

खाद्य एवं कृषि हेतु पादप आनुवांशिक संसाधनों के विषय में अंतर्राष्ट्रीय सन्धि (International Treaty on Plant Genetic Resources for Food Agriculture-ITPGFA) को अंतर्राष्ट्रीय बीज सन्धि (International Seed Treaty) भी कहते हैं। यह एक व्यापक अंतर्राष्ट्रीय सन्धि है जो जैव विविधता सम्मेलन (Convention on Biological Diversity-CBD) के साथ मिलकर काम करती है। यह वैश्विक पादप आनुवांशिक संसाधनों का सतत् उपयोग व संरक्षण करते हुए खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने का प्रयास करती है।

असीमित संसाधनों की उपलब्धता

जनसंख्या वृद्धि का निर्धारण दो प्रमुख कारकों के आधार पर किया जा सकता है प्रथम, वे कारक, जिनसे समष्टि में व्यक्तियों की संख्या बढ़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है; यथा- जन्म दर और अप्रवास (Immigration) एवं दूसरे कारक, जिनसे इनकी संख्या में कमी आती है यथा-मृत्यु दर एवं उत्प्रवास (Emigration)। इस प्रकार, प्रजातियों का उच्च जनन विभव उनकी जनसंख्या को बढ़ाता है तथा निम्न जनन विभव उनकी जनसंख्या को घटाता है। जनसंख्या वृद्धि सभी निर्दिष्ट कारकों के शुद्ध प्रभाव पर निर्भर होती है और स्वयं ये कारक प्रजातियों की विशिष्टताओं तथा पर्यावरणीय दशाओं पर निर्भर होते हैं।

समुदाय

पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर पाये जाने वाले पादपों तथा जंतुओं की समष्टियाँ एक-दूसरे से पृथक् स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करतीं। ये सदैव एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं तथा परस्पर एक समुदाय का निर्माण करती हैं अर्थात् प्रकृति में एक ही तरह के वातावरण में मिलने वाले विभिन्न जाति के जन्तुओं व वनस्पतियों का एक समूह, समुदाय कहलाता है।

प्राकृतिक पर्यावरण

प्राकृतिक पर्यावरण को भौतिक पर्यावरण भी कहते हैं। भौतिक पर्यावरण प्राकृतिक उपादानों, जैव एवं अजैव घटकों का समुच्चय होता है, जो धरातल से लेकर आकाश तक व्याप्त रहता है, प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत तीन प्रमुख तत्व समूह सम्मिलित किए जाते हैं।

मानव तथा पर्यावरण सह-संबंध

मानव प्रत्येक प्रकार के क्रियाकलापों के लिए पर्यावरण पर निर्भर है। परंपरागत समाज इस बात पर बल देते हैं कि प्रकृति में सभी वस्तुएं आपस में संबंधित या जुड़ी हुई हैं। उनके विश्वास के अनुसार, अनेक घटनाएं प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: प्रकृति पर मानवीय क्रियाओं का परिणाम हैं। कहीं पर्यावरण उसे प्रभावित करता है, तो कहीं वह उसके साथ अनुकूलन तथा परिवर्तन (Adaptation and Modification) करता है। इसे पर्यावरण वियोजन भी कहते हैं। वस्तुत: मानव की प्राकृतिक पर्यावरण के साथ दोहरी भूमिका होती है अर्थात् मानव एक तरफ तो भौतिक पर्यावरण के जैविक संघटक का महत्त्वपूर्ण भाग है, तो दूसरी तरफ वह पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण कारक भी है। इसी प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र को विभिन्न मानव क्रियाकलापों से विभिन्न रूपों में प्रभावित किया जाता है; यथा- जीवित या भौतिक मनुष्य के रूप में, सामाजिक मनुष्य के रूप में तथा प्रगतिशील मानव के रूप में। मानव के सभी प्राकृतिक गुण; जैसे- जन्म, वृद्धि, मृत्यु आदि प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा उसी प्रकार प्रभावित तथा नियंत्रित होते हैं, जैसे कि पर्यावरण के अन्य जीवों के प्राकृतिक गुण प्रभावित तथा नियंत्रित होते हैं। चूँकि मानव अन्य प्राणियों की तुलना में शारीरिक एवं मानसिक स्तरों तथा प्रौद्योगिक स्तर पर भी सर्वाधिक विकसित प्राणी है, अत: वह प्राकृतिक पर्यावरण को बड़े स्तर पर परिवर्तित करके अपने अनुकूल बनाने में भी समर्थ है। मानव पर्यावरण के सिद्धांतों को पूर्ण रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि मानव और उसके पर्यावरण के प्रभावों का अध्ययन किया जाए।

व्हाइट और रेनर ने भौगोलिक पर्यावरण के महत्व को निम्नलिखित रूपों में व्यक्त किया है-

भौतिक वातावरण मानव के बड़े समूहों को स्पष्टत: प्रत्यक्ष रूप में और प्राथमिक तरीके से प्रभावित करता है। रेनर का मानना है कि मानव की कोई भी महत्त्वपूर्ण क्रिया बिना पर्यावरणीय सहायता अथवा प्रभावों के सफल नहीं हो सकती है।

प्रसिद्ध मानव भूगोलविद् सैम्पल ने मानव पर पड़ने वाले भौगोलिक प्रभावों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया है-

- प्रत्यक्ष प्रभाव
- अप्रत्यक्ष प्रभाव
- मानव की गतिविधियों को प्रभावित करने वाले कारक
- आर्थिक और सामाजिक प्रभाव

प्रत्यक्ष प्रभाव

पर्यावरण के सभी तत्वों में जलवायु का प्रभाव सबसे महत्त्वपूर्ण है, जो मानव को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। जलवायु का प्रभाव प्राकृतिक वनस्पति और मिट्टियों तथा मनुष्य पर पड़ता है। जलवायु का प्रभाव मनुष्य की शारीरिक बनावट; यथा-रंग, लम्बाई आदि पर पड़ता है। उदाहरण के रूप में, ठंडे जलवायविक क्षेत्रों तथा विषुवत रेखीय क्षेत्रों में देखा जा सकता है। अत्यधिक तापमान, ऊँचाई तथा आर्द्रता वाले स्थानों पर मानव विकास काफी कठिन व दुष्कर होता है।

अप्रत्यक्ष प्रभाव

मानव द्वारा पर्यावरण पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पूर्व नियोजित नहीं होते हैं। पर्यावरण पर मानव के कार्यकलापों से जनित अप्रत्यक्ष प्रभाव

आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करने के लिए खासकर औद्योगिक विकास में विस्तार, मनुष्य द्वारा किए गये प्रयासों तथा कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। यद्यपि आर्थिक विकास के लिए किए जाने वाले इस तरह के कार्यकलाप आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं, परन्तु उनके द्वारा उत्पन्न होने वाले पश्चप्रभाव (After effects) निश्चित ही सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय हैं।

मानव की गतिविधियों को प्रभावित करने वाले कारक

मानव समूह के आवास-प्रवास को भौतिक पर्यावरण के सभी तत्व विशिष्ट एवं अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। इनके अंतर्गत पहाड़ों, मरुस्थलों, दलदलों, समुद्रों आदि का प्रभाव मानव के प्रवास पर पड़ता है। ये सभी उसके मार्ग का निर्धारण करते हैं, उसे सहयोग अथवा असहयोग देते हैं। उदाहरणार्थ, मानव ने नदी मार्गों का यातायात साधन के रूप में उपयोग किया, जिससे अनेक मानव जातियों ने दूर-दूर जाकर अपनी बस्तियां स्थापित कीं।

आर्थिक और सामाजिक प्रभाव

किसी स्थान की भौगोलिक दशाएँ ही इस बात का निर्धारण करती हैं कि वहाँ आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति सरलता से होगी अथवा कठिनाई से, वहाँ किस प्रकार के उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रभाव ही मानव समाज के आकार, विविधता आदि तत्वों को निर्धारित करते हैं। संसाधनों की सुलभता मनुष्य के जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती है, इससे मनुष्य अथवा किसी देश की आर्थिक क्षमता, सामाजिक संगठन, सामाजिक स्थिरता व अन्तर्राष्ट्रीय संबंध भी निर्धारित होते हैं, जिन क्षेत्रों, द्वीपों या पर्वतीय भागों में आर्थिक संसाधन कम मात्रा में पाए जाते हैं, वहाँ मनुष्य भी छोटे समुदायों में पाये जाते हैं क्योंकि उन क्षेत्रों में उनके लिए उपयुक्त पर्यावरण नहीं मिलता है।

प्राकृतिक संसाधन

प्रकृति अपार संसाधनों से परिपूर्ण है। मानव अपने विकास के आरम्भिक चरण में पूर्णत: प्रकृति पर निर्भर था। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ पर्यावरण के साथ उसके सहचर्य का स्वरूप भी बदला है। लगभग 10000 वर्ष पूर्व मानव जंगलों और घास के मैदानों में आखेटक-संग्राहक रूप में रहता था। धीरे-धीरे अपनी उसने आवश्यकताओं के अनुरूप अपने परिवेश को बदलना प्रारंभ किया, इसी क्रम में वह कृषकों और पशुपालकों में परिवर्तित हो गया। अधिकांश परंपरागत कृषक जल के लिए प्राकृतिक संसाधनों-वर्षा, जलधाराओं और नदियों पर बहुत हद तक निर्भर थे। आगे चलकर उन्होंने भूमिगत जल निकालने के लिए कुओं का उपयोग शुरू किया तथा जलप्रवाह को रोकने हेतु बाँध बनाया और जमीनों की सिंचाई की।

मानव जनसंख्या वृद्धि ने उत्पादन आयामों को प्रेरित किया। फलत: आगे चलकर औद्योगिक गतिविधियों की शुरूआत हुई, कृषि उत्पादन के स्वरूप में भी व्यापक बदलाव आया और इन कारकों ने नगरीकरण को तीव्र कर दिया। कृषि, नगरीकरण तथा औद्योगिक विकास के लिए बड़े पैमाने पर वनों का विनाश किया गया, जंगली जीव-जन्तुओं को हानि पहुँचायी गयी। प्राकृतिक भूगर्भिक संसाधनों, जल, कोयला व अन्य खनिज पदार्थों के अन्धाधुन्ध विदोहन ने पर्यावरणीय संतुलन को विरूपित करने का काम किया है।

इसके परिणामस्वरूप न केवल बहुमूल्य खनिज समाप्तप्राय हो गए, अपितु आधुनिक युग की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक पारम्परिक अथवा जीवाश्म ईंधनों के समाप्त होने का खतरा भी निकट भविष्य में मंडरा रहा है। सम्पूर्ण विश्व में पायी जाने वाली अनेक वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तु विलुप्त हो चुके हैं।

स्मरणीय बिन्दु

संवैधानिक प्रावधान

- **भारतीय संविधान में पर्यावरण के संरक्षण की व्यवस्थाएं (Provisions in Indian Constitution for Environmental Protection):-** पर्यावरण का संरक्षण भारत के संविधान का अंग है, जो अनुच्छेद 48A तथा 51A(g) में वर्णित है।
- अनुच्छेद 48A के अनुसार, सरकार पर्यावरण का संरक्षण करेगी तथा उसमें सुधार करेगी और साथ ही वनों एवं वन्य जीवों की सुरक्षा करेगी।
- अनुच्छेद 51A(g) के अनुसार, भारत के प्रत्येक नागरिक का यह उत्तरदायित्व है कि वह वनों, झीलों, नदियों तथा वन्य जीवों सहित राष्ट्रीय पर्यावरण का संरक्षण करे तथा उसमें सुधार लाए और जीवित जीवों के बारे में संवेदनशील रहे।
- भारत में प्रथम बार 1878 तथा 1927 के दौरान वन संरक्षण के लिए वैधानिक प्रयास किये गये। 1927 के भारतीय वन अधिनियम द्वारा सरकार के वन संरक्षण के लिए कर्त्तव्य सुनिश्चित किए गए।
- हाल ही में उत्तराखण्ड सरकार द्वारा गंगा नदी को जीवित नदी का दर्जा दिया गया। अत: यदि कोई व्यक्ति या संस्था गंगा नदी को विरूपित करने का प्रयास करेगा तो उसे उन्हीं विधि सम्मत धाराओं के तहत दण्डित किया जाएगा, जिसके तहत किसी मनुष्य को क्षति पहुँचाने पर किया जाता है। स्मरणीय है कि न्यूजीलैंड की वांगनुई नदी को विश्व की पहली जीवित नदी का दर्जा हासिल है जबकि गंगा नदी को विश्व की दूसरी जीवित नदी होने का दर्जा प्राप्त है।

अध्याय
2

जैवमंडल
Biosphere

जैवमंडल/जीवमंडल (Biosphere)

जैवमंडल क्या है?

पृथ्वी के धरातल पर अनेक जीव निवास करते हैं, जिनमें से कुछ जीव धरातल से कुछ ऊँचाई पर और कुछ धरातल से थोड़ी गहराई पर रहते हैं, वहीं कुछ जीव जल में निवास करते हैं। इन जीवों के निवास क्षेत्र को पर्यावरणीय दशाएँ नियंत्रित करती हैं। ऐसे विशाल या लघु क्षेत्र ही, जिसमें जीव निवास करता है, जैव या जीवमंडल कहलाता है। इसका विस्तार सम्पूर्ण पृथ्वी पर हो सकता है और किसी लघु आकार के क्षेत्र में भी। जैवमंडल एक जीवनदायी परत होती है, जो पृथ्वी के चारों तरफ व्याप्त है। जीवमंडल सामान्य रूप से पृथ्वी की सतह के चारों ओर व्याप्त एक आवरण है, जिसके अन्तर्गत पौधों तथा जन्तुओं का जीवन बिना किसी रक्षक साधन के सम्भव होता है। जीव-जगत या जीवमंडल पृथ्वी का वह भाग है, जिसमें जीवित जीव होते हैं।

जीवमंडल की संरचना के अन्तर्गत वायु, जल, स्थल, मिट्टी आदि शामिल होते हैं। जीवमंडल की ऊपरी परत का निर्धारण ऑक्सीजन, नमी, तापमान तथा वायुदाब की सुलभता तथा प्राप्यता के आधार पर किया जाता है। परिणामस्वरूप, बढ़ती ऊँचाई के साथ तापमान, ऑक्सीजन, नमी तथा वायुदाब में ह्रास के कारण जीवमंडल की ऊपरी सीमा अधिक ऊँचाई तक संभव नहीं हो पाती है। यद्यपि वायुमंडल में 15 किमी. की ऊँचाई तक बैक्टीरिया की उपस्थिति का पता चला है, परंतु वायुमंडल के मात्र उस निचले भाग में जीव अधिक पाये जाते हैं, जहाँ पर उनके विकास एवं संवर्धन के लिए दशाएँ अधिक अनुकूल होती हैं।

जीवमंडल का विभाजन

जीवमंडल पृथ्वी की सतह के आस-पास की एक संकरी परत होती है। जलमंडल, वायुमंडल तथा स्थलमंडल के आपसी संबंध ही जीवमंडल हैं। जीवमंडल वह क्षेत्र है जिसमें ये तीनों घटक मिलते एवं परस्पर क्रिया करते हैं। वास्तव में जीवन के लिए यही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यही ऐसा क्षेत्र है, जिसमें सम्पूर्ण जीवन तंत्र निहित है। जीवमंडल का आवरण पृथ्वी के तल से 30 कि.मी. ऊँचाई तक (वायु, जल तथा स्थल के रूप में) तथा जीवमंडल की ऊपरी परत का निर्धारण ऑक्सीजन, नमी, तापमान तथा वायुदाब की उपलब्धता के आधार पर किया जाता है। बढ़ती ऊँचाई के साथ तापमान, ऑक्सीजन तथा नमी में सतत् रूप से होती कमी के कारण जीवमंडल की ऊपरी सीमा बहुत कम ऊँचाई तक ही संभव हो पाती है। वैसे तो वायुमंडल में 15 किमी. ऊँचाई तक बैक्टीरिया की उपस्थिति का पता चला है, परन्तु वायुमंडल के निचले भाग में ही जीवों के विकास एवं संवर्धन के लिए अधिक अनुकूल दशाएँ उपलब्ध हैं।

वायुमंडल

जीवों के अस्तित्व में बने रहने के लिए विभिन्न आवश्यक गैसें वायुमंडल से ही मिलती हैं। वायुमंडल जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वायु के सभी घटक सजीव जीवधारियों के लिए श्वसन के रूप में कार्य करते हैं। वायुमंडल गुरूत्वाकर्षण शक्ति के द्वारा पृथ्वी के साथ जुड़ा हुआ है। वायुमंडल भी पृथ्वी के साथ परिभ्रमण करता है। पृथ्वी के धरातल के निकट वायु सघन होती है। ज्यों-ज्यों वायु ऊपर जाती है, वैसे-वैसे यह विरल (कम घनी) होती जाती है। इसीलिए वायुमंडल की कुल राशि का 50% भाग पृथ्वी के धरातल के 5 कि.मी. के भीतर और 97% भाग लगभग 29 कि.मी. के अन्दर पाया जाता है। वस्तुतः वायुमंडल अनेक गैसों का मिश्रण है। वायुमंडल में भिन्न-भिन्न गैसें एक निश्चित अनुपात में रहती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है-

वायुमंडल के सबसे निचले भाग में धूल-कण और जलवाष्प भी होते हैं। ये सभी वर्षण तथा हिमपात में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

कार्बन-डाईऑक्साइड

केवल क्लोरोफिलधारी जीव अर्थात् हरे पौधे, हरे एवं बैंगनी जीवाणु तथा नील-हरित शैवाल ही ऐसे जैविकीय सदस्य हैं, जो अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। वे प्रकाश संश्लेषण के द्वारा ऐसा करते हैं। इस प्रक्रिया में वे वायुमंडलीय कार्बन डाईऑक्साइड और उसके साथ-साथ जल का तथा कुछ खनिजों; जैसे- कैल्शियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम आदि का सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में उपयोग करके

कार्बनिक पदार्थ यानी भोजन बनाते हैं, जैसे- ग्लूकोज (सजीव प्राणियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण अवयव) तथा ऑक्सीजन, जो श्वसन के लिए आवश्यक है। कार्बन डाईऑक्साइड द्वारा प्रदान किए गए कार्बन तथा ऑक्सीजन सजीव पदार्थ के भीतर मृत्यु काल तक बने रहते हैं और CO_2 जीवित पदार्थ के विघटन के बाद ही वापस वायुमंडल में जाती है, जिससे उसका चक्र पूरा होता है।

नाइट्रोजन

नाइट्रोजन भी सभी सजीव तंत्रों का अनिवार्य घटक होती है। जीवों को इसकी आवश्यकता प्रोटीनों, न्यूक्लिक अम्लों तथा अन्य नाइट्रोजनी यौगिकों के संश्लेषण के लिए होती है।

ऑक्सीजन

ऑक्सीजन वायुमंडल का एक महत्त्वपूर्ण घटक है तथा सजीव तंत्र के लिए अनिवार्य तत्व है। प्राणी ऑक्सीजन का उपयोग आहार पदार्थ, जिसमें मुख्यत: ग्लूकोज अणु आते हैं, के ऑक्सीकरण में करता है, जिससे ऊर्जा उत्पन्न होती है और यही ऊर्जा जीव के विविध क्रियाकलापों के संचालन में सहायक होती है।

गैस	आयतन के अनुसार प्रतिशत
नाइट्रोजन	78.08
ऑक्सीजन	20.95
ऑर्गन	0.93
कार्बन डाईऑक्साइड	0.03
हीलियम	0.00052
निऑन	0.0018
क्रिप्टॉन	0.00010
मीथेन	0.00015
हाइड्रोजन	0.00005
नाइट्रस ऑक्साइड	0.00005
ओजोन	0.000007

वायुमंडल का वर्गीकरण-

वायुमंडल कई आवरणों अथवा परतों से बना है, ऊँचाई के साथ-साथ वायुमंडल के तापमान और दाब दोनों में परिवर्तन होता है, इस परिवर्तन के आधार पर हमें वायुमंडल की निम्नलिखित पाँच परतों का पता चलता है-

क्षोभमंडल (Troposphere)

ध्रुवों पर यह 8 कि.मी. तथा विषुवत् रेखा पर 18 कि.मी. की ऊँचाई तक पाया जाता है। इस मंडल में प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1°C तापमान घटता है, इसी परत में आर्द्रता, जलकण, धूलकण, वायुधुंध तथा सभी मौसमी घटनाएँ होती हैं। यह पृथ्वी की वायु का सबसे घना भाग है और पूरे वायुमंडल के द्रव्यमान का 90% हिस्सा इसी में मौजूद है।

क्षोभ सीमा (Tropopause)

क्षोभमंडल और समताप मंडल को अलग करने वाले 1.5 कि.मी. मोटे संक्रमण को ट्रोपोपॉज या क्षोभ सीमा कहा जाता है। इसमें ऊँचाई बढ़ने के साथ तापमान का गिरना बन्द हो जाता है।

Note

वायुमंडल पर्यावरण का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। वायुमंडल पृथ्वी के लिए आवरण का कार्य करता है। वायुमंडल की उपस्थिति के कारण ही पृथ्वी पर तापमान में बहुत अधिक अंतर नहीं हो पाता। यही नहीं, सूर्य की किरणें वायुमंडल को एक समान गर्म नहीं करती हैं। वायुमंडल के असमान रूप में गर्म होने के कारण वायु में परिसंचरण होता है, जिससे पवनें चलती हैं तथा वर्षण आदि होता है।

समताप मंडल

क्षोभमंडल के ऊपर समताप मंडल की परत स्थित है। समताप मंडल की मोटाई लगभग 50 से 55 किलोमीटर तक है। इस परत में तापमान स्थिर या एकसमान रहता है और उसके बाद ऊँचाई के साथ तापमान बढ़ता जाता है। समताप मंडल बादलों तथा मौसम संबंधी घटनाओं से मुक्त रहता है। अत: समताप मंडल के निचले भाग में जेट वायुयानों के उड़ान भरने के लिए आदर्श दशाएँ हैं। ओजोन इसी परत में पायी जाती है।

ओजोन मंडल (Ozonosphere)

समताप मंडल के निचले भाग में 15 से 35 कि.मी. के बीच ओजोन गैस का मंडल होता है। ओजोन गैस सूर्य से निकलने वाली हानिकारक पराबैंगनी विकिरण का अवशोषण कर लेती है। इस परत में प्रति कि.मी. 5 डिग्री सेल्सियस की दर से तापमान बढ़ता है।

मध्य मंडल (Mesosphere)

इस मंडल की ऊँचाई 50 से 80 कि.मी. तक होती है। इसमें तापमान में अचानक गिरावट आ जाती है एवं तापमान गिरकर -100°C तक पहुँच जाता है।

आयनमंडल (Ionosphere)

यह मध्यमंडल सीमा के ऊपर पाया जाता है। इसकी ऊँचाई 80 से 640 कि.मी. के मध्य है। इसमें ऊँचाई के साथ-साथ तापमान बढ़ने लगता है। इस मंडल का महत्व रेडियो संचार की दृष्टि से विशेष है क्योंकि रेडियो की विद्युत संचित तरंगों को पृथ्वी पर यही मंडल परावर्तित करता है।

बाह्य मंडल

इसकी ऊँचाई 640-1000 कि.मी. के मध्य है। इसमें भी विद्युत आवेशित कणों की प्रधानता होती है एवं यहाँ क्रमश: N_2, O_2, H_e, एवं H_2 की अलग-अलग परतें होती हैं। यह मंडल 1000 कि.मी. के बाद बहुत ही विरल हो जाता है।

जीवोम (Biome)

स्थल के विभिन्न क्षेत्रों की भौतिक दशाएं-धरातलीय उच्चावच, जलवायु, मृदा आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। इन भिन्नताओं के अनुरूप उस विशिष्ट क्षेत्र में वनस्पतियों एवं प्राणियों का विकास होता है। भौतिक तत्वों में जलवायु सर्वप्रमुख कारक है, जो वनस्पति समुदाय के विभिन्न पक्षों घनत्व, ऊँचाई, विस्तार, आकृति आदि का निर्धारण करती है। पुन: इसी वनस्पति समुदाय के अनुरूप उस क्षेत्र में प्राणियों का विकास होता है। अत: किसी भौतिक प्रदेश में पाई जाने वाली विशिष्ट जलवायविक दशाएं; जैसे- तापमान, आर्द्रता, वर्षा आदि का दैनिक और मौसमी परिवर्तन आदि ही उस क्षेत्र के वनस्पति समुदाय का और उससे सम्बन्धित प्राणी जीवन का निर्धारण करती हैं। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए क्लीमेंट्स एवं शेल्फर्ड ने 1939 ई. में बायोटिक यूनिट्स की अवधारणा प्रस्तुत की और इन्हीं इकाईयों को जीवोम या बायोम नाम दिया।

जीवोम या बायोम (Biome) जैवमंडल का एक खण्ड है, जो एक निश्चित क्षेत्र तक विस्तृत होता है, जिसमें समान जलवायविक दशाएं पायी जाती हैं और जिसके अनुरूप समान जीवन चक्र, संरचना एवं अनुकूलन वाली वनस्पति व जन्तु प्रजातियां पाई जाती हैं अर्थात् किसी भौगोलिक खण्ड के समस्त पादपों और प्राणियों के समुच्चय को जीवोम कहा जाता है।

वस्तुत: जीवोम एक ऐसी भौगोलिक इकाई है, जिसमें विशिष्ट प्रकार की वनस्पतियाँ और प्राणियों का जीवन समान रूप में विकसित होता है और वही उसकी पहचान बन जाती है।

जीवोम का वर्णन मुख्य रूप से वानस्पतिक लक्षणों के आधार पर किया जाता है, परंतु यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जीवोम के अन्तर्गत वनस्पति एवं प्राणी दोनों ही शामिल होते हैं। अत: यह किसी क्षेत्र का समग्र समुदाय है और यह प्रादेशिक जलवायु एवं प्रादेशिक जीव समूह के मध्य अन्तर्क्रिया का ही उत्पाद है।

पृथ्वी पर विविध प्रकार के जीवोम चिन्हित किए गए हैं जोकि विस्तृत भू-भाग में फैले हैं। कोई भी दो जीवोम एक जैसे नहीं होते। किसी जीवोम की सीमाएं क्या होंगी तथा प्रत्येक जीवोम में वनस्पतियों एवं प्राणियों की उपलब्धता कैसी होगी, इसका निर्धारण जलवायु द्वारा होता है। किसी भी जीवोम को प्रभावित करने वाले कारकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक तापमान तथा वर्षण हैं।

जीवोम के प्रकार (Types of Biome)

पृथ्वी के बायोम को विभिन्न आधारों; यथा-जलवायु, वनस्पति, मृदाजल की दशा, ऊष्मा, पौधों की वृद्धि दर आदि के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। इसमें विशिष्ट प्रकार के पौधे और जीव पाये जाते हैं, जिन्हें जीवमंडल भी कहा जा सकता है। जीवोम की विविधता भौतिक पर्यावरण, विशेष रूप से जलवायु और धरातल की देन है। पौधों की ऊँचाई, पत्तियों का आकार, वृक्षों की सघनता तथा

उनमें आश्रय पाये जीवों का प्रत्यक्ष संबंध जलवायु से है। अत: जलवायु के आधार पर विश्व के विभिन्न जीवोमों का निर्धारण किया गया है तथा इनके द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के जीवोम प्रकारों का निर्धारण वनस्पति के आधार पर किया गया है। आवास की प्रकृति के आधार पर बायोम को मुख्यत: दो वृहद् समूहों में विभाजित किया जाता है:-

- **स्थलीय जीवोम (Terrestrial Biome)**
- **जलीय जीवोम (Aquatic Biome)**

स्थलीय जीवोम (Terrestrial Biome)

स्थलीय समुदाय को प्रमुख उपवर्गों, वन जीवोम, मरू जीवोम और टुण्ड्रा जीवोम में बांटा गया है। स्थलीय जीवोम के अन्तर्गत हरे पादपों का प्रभुत्व सर्वप्रथम होता है क्योंकि इनकी संख्या, विस्तार और प्रभाव प्राणियों की तुलना में अधिक है। चूँकि पादप या पौधे स्वपोषी होते हैं। अत: ये जीवोम का आधार निर्मित करते हैं। पौधों के विकास को स्थानीय जलवायु प्रभावित करती है। विश्व के स्थलीय जीवोम को निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत किया गया है-

- **टुण्ड्रा जीवोम (Tundra Biome)**
  - आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम
  - अल्पाइन जीवोम
- **शीतोष्ण कटिबंधीय वन जीवोम (Temperate Forest Biome)**
  - भूमध्य सागरीय वन जीवोम
  - टैगा वन जीवोम
- **शीतोष्ण कटिबंधीय घास जीवोम (Temperate Grass Biome)**
  - स्टेपी जीवोम
  - प्रेयरी जीवोम
  - पम्पास जीवोम
  - डाउन्स जीवोम
- **उष्णकटिबंधीय वन जीवोम (Tropical Forest Biome)**
  - पर्वतीय वन जीवोम
  - सदाबहार वन जीवोम
  - पतझड़ वन जीवोम
- **उष्णकटिबंधीय घास जीवोम (Tropical Grass Biome)**
  - सवाना वन जीवोम
  - सवाना घास भूमि
  - सवाना वन तथा घास जीवोम
- **उष्णकटिबंधीय मरुस्थलीय जीवोम (Hot Desert Biome)**

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि दो पड़ोसी जीवोम के मध्य की सीमा रेखा स्पष्टता से शायद ही कभी निर्धारित होती है। हालांकि, ये जीवोम अन्तर्वर्ती क्षेत्र, जो कि इकोटोन कहलाता है, के द्वारा मिले होते हैं।

टुण्ड्रा जीवोम (Tundra Biome)

कनाडा तथा यूरेशिया के उत्तर में स्थित यह ध्रुवीय शीत मरुस्थल ऊँचे अक्षांशों में न्यूनतम तापमान के कारण हिमाच्छादित रहता है। शीतकाल में इसका तापमान -13.50°C से -45.50°C तक रहता है। टुण्ड्रा प्रदेश अधिकांश समय तक बर्फ से आच्छादित रहता है, परंतु ग्रीष्म काल आते ही हिम का पिघलना शुरू हो जाता है और धरातल पर काई, लाइकेन तथा बिलो आदि वनस्पतियाँ दिखने लगती हैं। इन विरल वनस्पतियों से युक्त टुण्ड्रा प्रदेश में कुछ अति शीतसह्य प्राणी भी पाये जाते हैं, जिनमें रेंडियर, केरिबू, सफेद भालू, सफेद भेड़िये आदि शामिल हैं। यहाँ के निवासी लैप, सैमोयेद तथा एस्किमो भोजन में मछली के अतिरिक्त रेंडियर के माँस तथा दूध का उपयोग करते हैं। यहाँ के अधिकांश प्राणी बिलों या कंदराओं में निवास करते हैं। उनके शरीर में त्वचा के नीचे वसा की मोटी परत पाई जाती है।

आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम

यह ध्रुवीय जलवायु वाला प्रदेश है। यहाँ भी वर्ष भर तापमान निम्न रहता है और धरातल हिमीकृत अवस्था में रहता है। अत: वर्ष भर ऊष्मा की अत्यधिक न्यूनता रहती है, वृक्षों का सर्वथा अभाव रहता है। यद्यपि कुछ शाकीय वनस्पतियाँ पायी जाती हैं।

अल्पाइन पर्वतीय टुण्ड्रा जीवोम

यह जीवोम आर्कटिक टुण्ड्रा के लगभग समान होता है। अन्तर मात्र यह है कि यह उच्च पर्वतों पर वृक्ष रेखा (Tree Line) के ऊपर होता है, जबकि आर्कटिक टुण्ड्रा ध्रुवों के चारों ओर व्याप्त है। पर्वतों पर अधिक ऊँचाई पर ठंड की अधिकता के कारण टुण्ड्रा

जैसी वनस्पतियां विकसित हो जाती हैं, जिन्हें अल्पाइन टुण्ड्रा कहते हैं। आर्कटिक टुण्ड्रा के विपरीत, इन उच्च भू-भागों पर स्थायी हिम नहीं जमा होती, साथ ही साथ उनकी मिट्टियाँ सुप्रवाहित होती हैं।

अल्पाइन टुण्ड्रा जीवोम में सामान्यतया अपेक्षाकृत अधिक गर्मी और लम्बा शस्यन काल पाया जाता है। यहाँ आर्कटिक की तुलना में अधिक वर्षण, कम कठोर सर्दी एवं अधिक प्रजातीय विविधता पाई जाती है। शीतोष्ण कटिबंध में अल्पाइन टुण्ड्रा के प्रदेश उत्तरी अमेरिका में रॉकी पर्वत एवं अल्पाईन पर्वत, यूरोप में आल्पस पर्वत श्रेणी एवं एशिया में तिब्बत का पठार हैं, जबकि उष्ण कटिबंध में ये मध्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, बोर्नियो, न्यूगिनी आदि तथा भारत के उच्च पर्वतों पर पाए जाते हैं।

शीतोष्ण कटिबन्धीय वन जीवोम (Temperate Forest Biome)

मध्य अक्षांशों में पायी जाने वाली शीतोष्ण कटिबंधीय जलवायु में विशिष्ट वन जीवोम पाया जाता है। इस जीवोम प्रदेश को दो उपभागों में बांटा जाता है- पर्णपाती वन जीवोम तथा गर्म शीतोष्ण वन जीवोम। पर्णपाती वन जीवोम दक्षिण-पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण-पूर्व दक्षिणी अमेरिका, दक्षिण-पूर्व तटीय अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व ऑस्ट्रेलिया और पूर्वी चीन में पाये जाते हैं। चीन तुल्य जलवायु वाले इस प्रदेश में सामान्य गर्म, ग्रीष्म तथा कठोर शीतकाल और सामान्य वर्षा के कारण सघन वन पाए जाते हैं, जिनमें कुछ सदाबहार और कुछ पर्णपाती वृक्ष मिलते हैं।

भूमध्यसागरीय वन जीवोम (Mediterranean Forest Biome)

ये वन 30° से 40° अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में पाये जाते हैं। यूरोप के दक्षिणी भाग, अफ्रीका के पश्चिमी तट, दक्षिण अमेरिका के चिली तट और ऑस्ट्रेलिया के दक्षिण-पूर्वी तट ऐसे ही जीवोम क्षेत्र हैं।

भूमध्यसागरीय जीवोम की जलवायविक विशेषता यह है कि यहाँ आर्द्र, शीत एवं उष्ण व शुष्क ग्रीष्म ऋतु पायी जाती है। यहाँ की वनस्पतियों के तीन स्तर पाये जाते हैं। सबसे ऊपरी स्तर पर ओक वृक्ष, मध्यम स्तर में सदाबहार झाड़ियाँ और छोटे वृक्ष तथा सबसे निचले स्तर पर छोटी झाड़ियाँ एवं घास वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। अन्य पादपों में बर्च, पाइन, फर आदि वनस्पतियाँ पायी जाती हैं।

टैगा वन जीवोम (Taiga Forest Biome)

टैगा मुख्यत: कोणधारी वन जीवोम है। आर्कटिक वृत्त (66½°) के चारों ओर यूरोप, एशिया व उत्तरी अमेरिका महाद्वीपों में ये वन पाए जाते हैं। इसके अलावा, अन्य भागों में ऊँचे पर्वतों पर कोणधारी वृक्ष मिलते हैं। सामान्यत: टैगा वनों का विस्तार सभी वन क्षेत्रों में सर्वाधिक है, जबकि जैवविविधता और उत्पादकता वन पारितंत्रों में सबसे कम है। टैगा वन क्षेत्रों में पॉडजोल मृदा पायी जाती है तथा धरातल पर लाइकेन एवं झाड़ियाँ दिखायी देती हैं। इस जीवोम में स्प्रूस, लार्च, चीड़ (पाइन) तथा अन्य झाड़ीयुक्त वनस्पतियाँ पायी जाती हैं।

शीतोष्ण कटिबन्धीय घास जीवोम (Temperate Grass Biome)

शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में निम्न तापमान के साथ आर्द्रता भी कम पायी जाती है। जिसके कारण इस क्षेत्र में बड़े पौधों के विकास हेतु जलवायु अनुकूल नहीं होती है। फलत: यहाँ बड़े-बड़े घास के मैदान पाये जाते हैं। यूरोप में इन घास के मैदानों को स्टेपी, उत्तरी अमेरिका में प्रेयरी, दक्षिण अफ्रीका में वेल्ड, ऑस्ट्रेलिया में डाउन्स तथा दक्षिण अमेरिका में पम्पास कहते हैं। इनमें घास के साथ-साथ पाइन, एल्म, ओक, मैपिल, विलो, बर्च आदि वृक्ष भी पाये जाते हैं।

स्टेपी

यूरोप तथा एशिया महाद्वीप के आन्तरिक भागों में स्टेपी घास भूमि पायी जाती है। वस्तुत: यह अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है, जहाँ 10-20 से.मी. ऊँची घासों की परत देखने को मिलती है।

यह घास भूमि उन शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है, जहाँ वार्षिक वर्षा 25 से 50 से.मी. तक रहती है। उर्वर चिर्नोजेम एवं चेस्टन-भूरी मिट्टियों की उपलब्धता के कारण यहाँ व्यापारिक कृषि का विकास हुआ है।

प्रेयरी

उत्तरी अमेरिका के आंतरिक मध्यवर्ती एवं पश्चिमी भाग में नम घासभूमि पायी जाती है, जो कनाडा में 53° उत्तरी से टेक्सास, संयुक्त राज्य अमेरिका में 32° उत्तरी अक्षांश तक विस्तृत है। लम्बी घासों वाली इस घास भूमि को प्रेयरी कहा जाता है। इनमें पायी जाने वाली घास की प्रमुख प्रजातियाँ हैं- नीडलग्रास, व्हीटग्रास, ब्लूस्टेम आदि।

पम्पास

पम्पास जीवोम मुख्यत: दक्षिण अमेरिका के अर्जेंटीना में पाया जाता है। हालांकि, इसका कुछ विस्तार उरुग्वे तथा ब्राजील में

भी पाया जाता है। यह उत्तर में ग्रेन चाको से लेकर दक्षिण में पेटागोनिया की सीमा तक फैला हुआ है। यहाँ शाकीय वनस्पतियों की अधिकता है।

डाउन्स

शीतोष्ण कटिबंधीय घास भूमि को ऑस्ट्रेलिया में 'डाउन्स' के नाम से जाना जाता है।

उष्णकटिबंधीय वन जीवोम (Tropical Forest Biome)

सदाबहार वन जीवोम

उष्णकटिबंधीय वन जीवोम को अयनवर्ती सदाबहार वन जीवोम के नाम से भी जाना जाता है। यह विषुवत् रेखा के 10° उत्तरी तथा 10° दक्षिणी अक्षांशों के मध्य विस्तृत है। इस क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा 200 सें.मी. तथा उच्च तापमान (लगभग 20° C) रहता है। यही कारण है कि यहाँ वनस्पतियों के विकसित होने की पूर्ण दशाएँ विद्यमान होती हैं। स्मरणीय है कि यहाँ दैनिक और वार्षिक तापांतर भी न्यून होता है जिसके कारण वर्ष भर लगभग समान मौसमी दशाएं बनी रहती हैं। अनुकूल मौसमी दशाओं के कारण यहाँ अति सघन वनस्पतियों का विकास होता है।

उष्णकटिबंधीय वर्षा वन पृथ्वी की सतह के केवल 7 प्रतिशत भाग में फैला है, परंतु इसमें पायी जाने वाली पादप एवं प्राणी प्रजातियां समूचे विश्व की लगभग 40% हैं।

पर्णपाती वन जीवोम

10° से 30° अक्षांशों के बीच दोनों गोलार्द्धों में अलग-अलग स्थानों पर यह जीवोम पाये गए हैं। यहाँ तापमान तथा आर्द्रता में स्पष्ट अन्तर देखने को मिलता है। ग्रीष्मकाल में यहाँ तापमान 30° से 45° से.ग्रे. तक तथा शीतकाल में 10° से 27° से.ग्रे. तक होता है। इस जीवोम क्षेत्र में वर्षा साल के कुछ ही महीनों में होती है। फलतः ऐसी जलवायु में शुष्कता का एक सीमित काल आता है, जिसका सामना करने के लिए यहाँ की वनस्पतियाँ अपनी पत्तियों को गिरा देती हैं, इसीलिए इन वनों को पर्णपाती या पतझड़ वन कहा जाता है। परंतु इसी क्षेत्र के जिन भागों में अपेक्षाकृत अधिक वर्षा होती है, वहाँ सदाबहार वृक्ष पाये जाते हैं। जैसे-भारत के मेघालय एवं पश्चिमी घाट के पहाड़ों के पश्चिमी ढालों पर।

पर्णपाती वन जीवोम का भौगोलिक विस्तार दक्षिणी एशिया, दक्षिणी चीन, उत्तरी ऑस्ट्रेलिया, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण-पूर्वी एशिया और मध्यवर्ती अमेरिका में पाया जाता है। स्मरणीय है कि यह क्षेत्र मानसूनी जलवायु क्षेत्र भी कहा जाता है। मौसमी दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत विविधतापूर्ण है, जहाँ औसत वर्षा 150 सें.मी. है, परन्तु यह 2-3 महीनों में ही प्राप्त होती है।

इस जीवोम की वनस्पतियों की सर्वप्रमुख विशेषता वर्ष में एक बार पत्तियाँ गिराना है। पादप समुदाय में प्रजातियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है तथा ये वन अपेक्षाकृत कम सघन होते हैं। वृक्षों की ऊँचाई 30 मीटर तक होती है तथा वनस्पति समुदाय को चार स्तरों में बांटा जा सकता है। प्रथम दो स्तर वृक्षों के, तीसरा झाड़ियों का और चौथा घासों का है। वृक्षों में साल, सागौन, बेर, बबूल, बेंत आदि प्रमुख हैं।

पर्वतीय वन जीवोम

पर्वतीय प्रदेश अपनी विशिष्ट जैविक विविधता के लिए जाने जाते हैं। ऊँचाई में परिवर्तन के साथ वनस्पतियों के लक्षणों में तथा उनके अनुरूप प्राणियों में परिवर्तन देखा जा सकता है। इस जीवोम की प्रकृति पर्वतों की अवस्थिति, सूर्य से संमुखता तथा पर्वतों की ऊँचाई बढ़ने के साथ तापमान का घटना है। इसलिए पर्वतों का जीवोम ऊर्ध्वाधर प्रतिरूप प्रदर्शित करता है।

वनस्पतियों में जिस प्रकार हम उष्णकटिबंधीय प्रदेशों से टुंड्रा की ओर देखते हैं, उसी प्रकार का अंतर पर्वतीय भागों में ऊँचाई के साथ-साथ देखने को मिलता है। 1000 मीटर से 2000 मीटर तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में आर्द्र शीतोष्ण कटिबंधीय वन पाए जाते हैं। इनमें चौड़ी पत्ती वाले ओक तथा चेस्टन जैसे वृक्षों की प्रधानता होती है। 1500 से 3000 मी. की ऊँचाई के बीच शंकुधारी वृक्ष; जैसे-चीड़ (पाइन), देवदार, सिल्वर फर, स्प्रूस, सीडर आदि पाये जाते हैं। ये वन प्रायः हिमालय की दक्षिणी ढलानों, दक्षिण और उत्तर-पूर्व भारत के अधिक ऊँचाई वाले भागों में पाए जाते हैं। 3600 मी. से अधिक ऊँचाई पर शीतोष्ण कटिबंधीय वनों तथा घास के मैदानों का स्थान अल्पाइन वनस्पति ले लेती है। सिल्वर-फर, जूनिपर, पाइन व बर्च इस जीवोम के मुख्य वृक्ष हैं। जैसे-जैसे हिमरेखा के निकट पहुँचते हैं, इन वृक्षों के आकार छोटे होते जाते हैं। अंततः झाड़ियों के रूप के बाद वे अल्पाइन घास के मैदान में विलीन हो जाते हैं।

उष्णकटिबंधीय घास जीवोम (Tropical Grass Biome)

उष्णकटिबंधीय घास के मैदान को सामान्यतः सवाना कहते हैं। ये पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया तथा भारत में पाये जाते हैं। सवाना एक जटिल जीवोम तंत्र है। अध्ययन की सुविधा के लिए इसे निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया गया है-

सवाना वन जीवोम

इस प्रकार के जीवोम में वृक्ष एवं झाड़ियों की संख्या अधिक तथा घास कम पाये जाते हैं। वृक्षों की अधिकता वाले सवाना जीवोम वहाँ पाये जाते हैं, जहाँ शुष्क ऋतु तीन महीने से अधिक लम्बी होती है। ये अधिकांशत: भूमध्यरेखा के निकट पाए जाते हैं।

सवाना घास भूमि

इनमें वृक्षों की संख्या बहुत कम या नहीं होती है तथा सिर्फ विरल झाड़ियाँ ही पायी जाती हैं। ये मुख्यत: मध्यम वर्षा एवं मृत्तिका मृदा वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं।

सवाना वन तथा घास जीवोम

यह विशेषकर एक घास निर्मित पारितंत्र है। इसका विस्तार मध्य अफ्रीका के उत्तर में स्थित है। इस जीवोम के अन्तर्गत विरल वन भूमि भी पाई जाती है। सवाना भूमि के अंतर्गत मध्यम ऊँचाई के वृक्ष देखे जा सकते हैं। गधा, जेब्रा, चिंकारा घास के मैदानों में चरते हुए पाए जाते हैं। यह पारितंत्र दुग्ध और चमड़ा उद्योग का आधार है। घास के मैदानों में कृन्तकों, सरीसृपों और कीटों की बहुत बड़ी आबादी पाई जाती है।

उष्णकटिबंधीय मरुस्थलीय जीवोम (Tropical Desert Biome)

ऐसे स्थलखण्ड, जहाँ वाष्पीकरण की मात्रा वर्षण से अधिक होती है, मरुस्थलीय क्षेत्र कहलाते हैं। ये क्षेत्र निम्न आर्द्रता वाले एवं अत्यंत अनिश्चित वर्षा वाले होते हैं। फलस्वरूप, इसमें विशिष्ट वनस्पतियाँ व जीव पाये जाते हैं। वर्षण की मात्रा के आधार पर मरुस्थलों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है-

- ऐसे पौधे, जिनकी जल धारण (संग्रहण) क्षमता अधिक होती है और इनकी फैली हुई जड़ें छिटपुट वर्षा की घटनाओं में प्राप्त जल को अवशोषित कर लेती हैं।
- बबूल की झाड़ियाँ मरुस्थलों की सीमाओं पर काफी पायी जाती हैं, जो आर्द्रता से संरक्षण की दोहरी नीति अपनाती हैं। पहली यह कि इनकी ऊपरी जड़ें दूर तक फैली होती हैं, जो छिटपुट वर्षा के जल को संग्रहित करती हैं और दूसरी, उसकी कुछ जड़ें काफी गहरायी तक चली जाती हैं, जो उपमृदा एवं गहरी चट्टानों में उपलब्ध स्थायी भौमजल से नमी प्राप्त करती हैं।
- अधिकांश मरुस्थलीय पौधे अपनी पत्तियों, छाल, जड़ों आदि में पर्याप्त जलसंग्रहण की क्षमता रखते हैं। उत्तरी अफ्रीका में सहारा, संयुक्त राज्य अमेरिका में एरीजोना, दक्षिण अफ्रीका में कालाहारी, दक्षिण अमेरिका में अटाकामा, उत्तर-पश्चिम भारत में थार, पश्चिमी एशिया तथा मध्यवर्ती पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया में ये मरुस्थल पाए जाते हैं। ये मरुस्थल प्राय: कर्क या मकर रेखाओं पर विस्तृत हैं, जहाँ उच्च वायुमंडलीय हवाओं का ऊपर से नीचे की ओर अवरोह होता है तथा धरातलीय पवनें स्थल से सागर की ओर प्रवाहित होने के कारण शुष्क हो जाती हैं। थार के मरुस्थल में कँटीले वन तथा शुष्क घास के मैदान पाये जाते हैं। इनमें इसबगोल, खेजड़ी, बबूल जैसी वनस्पतियाँ तथा रेगिस्तानी लोमड़ी, भारतीय गेजल, चार सींग वाला हिरण, ग्रेट इंडियन बस्टर्ड तथा ब्लैक बक आदि जीव भी पाये जाते है।
- ऐसी विषम परिस्थितियों में रहने हेतु वनस्पतियों ने अनुकूलन के अनेक तरीके अपनाये हैं; जैसे-अल्पकालीन जीवन, (आर्द्रता की कमी के कारण मरुस्थलों में अनेक पौधे अत्यंत लघु काल में ही अपना जीवन पूरा कर लेते हैं)। इनमें से कुछ पौधे तो कुछ दिनों के लिए ही उगते हैं। शेष समय में उनके बीज सुषुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। कुछ ऐसे भी पौधे हैं, जिनके बीज, वर्षा होते ही छोटे पादप समूहों का रूप ले लेते हैं।
- ब्राजील के उत्तरी-पूर्वी प्रदेशों में कँटीले वनों का एक विस्तृत क्षेत्र पाया जाता है, जिसे 'कटिंगा' कहा जाता है। मरुस्थलीय वनस्पतियों में नागफनी, इवेर्डस, यूफोर्बिया (दक्षिण अफ्रीका), खेजड़ी, बबूल, खैर आदि पाए जाते हैं, जबकि मरुस्थलीय जीवों में लोमड़ी, कंगारु, कोयोट, ग्रेट इंडियन बस्टर्ड, गेडरनर, बैडजर आदि आते हैं।

जीवोम का नाम	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्राणिजात [Fauna]
टुण्ड्रा (Tundra)	कनाडा तथा यूरेशिया के उत्तर में स्थित ध्रुवीय शीतमरुस्थल।	टुण्ड्रा प्रदेशों की वनस्पतियाँ मुख्यत: बौनी झाड़ियाँ, दलदली पौधे, घास, काई और लाइकेन आदि हैं। जबकि रेंडियर, उत्तरी ध्रुवीय लोमड़ी, ध्रुवीय भालू, हिम उल्लू, लेमिंग, उत्तर ध्रुवीय खरगोश,पैटरमिगन, तथा सरीसृप आदि जन्तु भी पाए जाते हैं।
टैगा (Taiga)	उत्तरी यूरेशिया तथा उत्तरी अमेरिका, परंतु ऐसे क्षेत्र, जहाँ टुण्ड्रा की अपेक्षा तापमान अधिक होता है। इसे Borial Forest भी कहते हैं।	अधिकांश बर्फ से आच्छादित प्रदेश हैं, यहाँ मुख्यत: शंकुधारी सदाबहार वृक्ष पाए जाते हैं जिनमें अधिकतर स्प्रूस ही हैं और साथ में कुछ चीड़ तथा फर भी होते हैं। जबकि जीव-जन्तुओं में छोटे बीज-भक्षी पक्षी, बाज, समूरधारी माँसभक्षी, छोटे मिंक, एल्क, प्यूमा, कुल्वेरीन आदि आते हैं।
शीतोष्ण पर्णपाती (Temperate Deciducous Forest)	दक्षिण-मध्य यूरोप, उत्तर-पूर्वी अमेरिका, पश्चिमी चीन, जापान, न्यूजीलैण्ड आदि तक विस्तृत हैं। तापमान औसतन साधारण रहता है तथा वर्षा प्रचुर होती है। ये क्षेत्र पृथ्वी के सामान्यत: सर्वाधिक कृषि उत्पादक क्षेत्र होते हैं।	इसके अंतर्गत-ओक, मैपल, चेरी (Cherry), बीच आदि वनस्पतियाँ व वृक्ष पाए जाते हैं। जबकि जन्तुओं में ब्रिजा, ब्रोमस, पैनिकम, हिरण, जेब्रा आदि पाये जाते हैं।
उष्णकटिबंधीय वर्षा वन	उष्णकटिबंधीय क्षेत्र, जहाँ विषुवतीय क्षेत्रों में भारी वर्षा होती है, जिनके भीतर भरपूर जीवन पाया जाता है तथा तापमान अधिक रहता है।	उष्णकटिबंधीय वर्षा वन पृथ्वी की सतह के केवल 7 प्रतिशत भाग में विस्तृत हैं, परन्तु इसमें पायी जाने वाली पादप एवं जन्तु प्रजातियाँ समूचे विश्व की 40 प्रतिशत प्रजातियों के बराबर हैं, इसमें लम्बे चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वृक्ष की प्रजातियाँ प्रचुरता से पायी जाती हैं। अधिकतर प्राणी तथा अधिपादप (Epiphytic) पौधे वितान अर्थात् वृक्षशीर्ष क्षेत्रों में ही जीवनयापन करते हैं।
सवाना	10° से 20° अक्षांशों के बीच पूर्वी दक्षिण अमेरिका, मध्यवर्ती अफ्रीका और उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में विशिष्ट सवाना घास जीवोम पाये जाते हैं।	इस जीवोम में लम्बी कड़ी घासों की प्रधानता है, जिसमें यत्र-तत्र वृक्ष भी दिखाई देते हैं। यहाँ कुरंग, भैंस, जिराफ, हाथी, गैंडे, सिंह, चीता आदि पाये जाते हैं।
घासस्थल	उत्तर अमेरिका का मध्य पश्चिम भाग तथा यूक्रेन, जिनमें घासें बहुत होती हैं।	वनस्पतियों में घासों की प्रमुखता, प्राणिजात में शाकभक्षी, जैसे-कुरंग, मवेशी आदि आते हैं।
मरुस्थल	महाद्वीपीय आंतरिक भाग, जिनमें बहुत कम और कभी-कभार ही वर्षा होती है तथा आर्द्रता कम रहती है।	नागफनी (केक्टस), सेजबुश बबूल आदि वनस्पतियाँ तथा प्राणिजगत के अंतर्गत ऊँट, खरगोश, स्कंक, कोयोट आदि।

जलीय जीवोम (Aquatic Biome)

स्थलीय जीवोम की तुलना में जलीय जीवोम का वर्गीकरण अपेक्षाकृत अधिक कठिन कार्य है। चूंकि स्थलीय जीवोम में मुख्यत: वनस्पतियों का ही योगदान होता है और ये वनस्पतियाँ धरातल पर स्थायी रूप से निवास करती हैं, अत: उनका वितरण स्पष्टतया दृष्टिगत होता है। जबकि जलीय जीवोम के वर्गीकरण में त्रियामी क्षेत्र का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि इसमें जल की गहराई या जलीय स्तम्भ की दृष्टि से भी जीवोम के वितरण का विश्लेषण करना होता है।

जलीय जीवोम का विभाजन जलीय आवास की भौतिक विशेषताओं; जैसे- लवणता, गहराई, जलीय गति आदि के आधार पर किया जाता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि स्थलीय जीवोम के निर्धारण में तापमान की भूमिका तो सर्वप्रमुख है, परंतु जलीय जीवोम की दृष्टि से इसका महत्त्व घट जाता है क्योंकि जल की विशिष्ट ऊष्मा बहुत अधिक है इसीलिए दैनिक, मौसमी या अक्षांशीय आधार पर जल के तापमान में अंतर अपेक्षाकृत कम होता है। इसके अतिरिक्त जलीय जीवोम के निर्धारण में लवणता, जलदाब, प्रकाश की उपलब्धता आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इनमें भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लवणता है, अत: जलीय जीवोम के आवासों को लवणता के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

सागरीय (खारा जल) जीवोम (Marine Biome)

सागरीय जीवोम धरातल पर वृहद् स्तर पर फैला हुआ है। सागरीय जीवोम की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये निरंतरता में बने रहते हैं अर्थात् उनका स्पष्ट विभाजन नहीं हो पाता, बल्कि उनमें संक्रमण क्षेत्र पाये जाते हैं। फिर भी विश्व के सागरीय जीवोम को जलवायवीय दशाओं के आधार पर 9 जैव-भौगोलिक प्रदेशों में विभाजित किया जाता है-

- आर्कटिक प्रदेश
- उप-आर्कटिक प्रदेश
- उत्तरी शीतोष्ण प्रदेश
- उत्तरी उपोष्ण प्रदेश
- उष्णकटिबंधीय प्रदेश
- दक्षिणी उपोष्ण प्रदेश
- दक्षिणी शीतोष्ण प्रदेश
- उप अंटार्कटिक प्रदेश
- अंटार्कटिक प्रदेश

महासागरीय जल के विकास में विशिष्ट प्रकार के जीवोमों का विकास होता है। महासागरों को लम्बवत् एवं क्षैतिज रूप से विभिन्न प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है; जैसे- प्रथम, वेलापवर्ती प्रभाग (Pelagic Division) तथा दूसरा, नितलस्थ प्रभाग (Benthic Division)।

वेलापवर्ती प्रभाग

इसके अंतर्गत वे प्रकाशीय प्रदेश आते हैं, जहाँ महासागर के ऊपरी जलीय भाग में प्रकाश की उपलब्धता बनी रहती है। चूंकि जल की गहराई में वृद्धि के साथ प्रकाश का अवशोषण बढ़ता जाता है, जिसके कारण एक निश्चित गहराई पर प्रकाशीय प्रदेश की सीमा तय हो जाती है। किन्तु अलग-अलग क्षेत्रों में इसकी गहराई अलग-अलग होती है। उदाहरण के लिए, तटवर्ती क्षेत्रों का प्रकाशीय प्रदेश धरातल से 30 मीटर से अधिक गहरा नहीं होता है, जबकि खुले सागर में यह 200 मीटर की गहराई तक हो सकता है। यह प्रकाशीय क्षेत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि महासागर की समस्त प्रकाश-संश्लेषण क्रियाएँ इसी प्रदेश में संपन्न होती हैं। फलत: समस्त जैविक ऊर्जा, जो समस्त सागरीय जीवन को बनाए रखने के लिए आवश्यक है, वह इसी छिछले सागरीय प्रदेश में उत्पादित होती है।

सागरीय जीवोम के अंतर्गत अप्रकाशीय क्षेत्र या प्रदेश भी पाये जाते हैं। यहाँ प्रकाश एक निश्चित सीमा के पश्चात् नहीं पहुँच पाता। फलत: इस प्रदेश में अंधेरा छाया रहता है। अप्रकाशीय क्षेत्र का निर्धारण उस क्षेत्र के रूप में भी किया जाता है, जहाँ प्रकाश का वेधन घटकर आपतित प्रकाश के 1 से 10 प्रतिशत के मध्य हो जाता है। इस क्षेत्र के अंतर्गत पाये जाने वाले जीव-जन्तु अपनी ऊर्जा की प्राप्ति प्रकाश क्षेत्र में उत्पादित भोजन से ही करते हैं। स्थानीय स्तर पर रासायनिक संश्लेषित बैक्टीरिया द्वारा महासागरीय नितल पर उष्णस्रोतों (Hotsprings) से उत्पन्न हुए हाइड्रोजन सल्फाइड के संश्लेषण से भी ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है, जिससे एक स्थानीय आहार शृंखला के निर्माण का आधार बन सकता है।

नितलस्थ प्रभाग

सामान्यत: महासागर के तली या नितल को ही नितलस्थ प्रभाग अथवा नितलस्थ क्षेत्र कहते हैं। क्षेत्र के अंतर्गत तीन स्तर पाये जाते हैं-

- **नितलस्थ प्रदेश:-** यह महाद्वीपीय मग्नतट पर विस्तृत नितल क्षेत्र हैं, जो पर्वत के पार्श्वों के समरूप सागरीय प्रदेश हैं। यह महाद्वीपीय मग्नतट के किनारों पर अत्यधिक परिवर्तनशील उच्चावच वाला प्रदेश है, जहाँ जल तेजी से महासागरीय गहराईयों में गिरता है।
- **विनितलस्थ प्रदेश:-** यह महासागर के अधिकांश विस्तार के नितल को दर्शाता है, जो 2000 मी. से 6000 मी. की गहराई तक पाया जाता है।
- **उन्नमन प्रदेश:-** महासागर के नितल पर पाई जाने वाली गहरी खाईयों को उन्नमन प्रदेश के रूप में दर्शाया जाता है। जिसकी गहराई 6000 मी. से 10000 मी. तक हो सकती है।

महासागर का सबसे छिछला प्रदेश बड़े झीलों के सीमांत या जहाँ सागर तट से मिलता है, उसे वेलांचली प्रदेश या अंतर्ज्वारीय प्रदेश कहते हैं। महासागरीय सूक्ष्मजीवों में प्लवक एवं नेक्टन (Necton) शामिल होते हैं, ये सभी समुद्री जल में तैरते रहते हैं, जैसे- प्रकाश- संश्लेषी पादप (फाइटोप्लैंकटन) अथवा सूक्ष्मजीव (जैवप्लैंकटन), उदाहरणार्थ, छोटे क्रस्टेशियन एवं अकशेरूकी लार्वा। जैवप्लैंकटन भी शाकाहारी या माँसाहारी हो सकते हैं। शाकाहारी जैवप्लैंकटन अपना पोषण पादपप्लैंकटन को खाकर करते हैं, जबकि माँसाहारी जैवप्लैंकटन अपना पोषण उन्हीं शाकाहारी जैवप्लैंकटन को खाकर प्राप्त करते हैं। जैसे-ऐरो वर्म तथा कोम्बजेली के लार्वा आदि।

स्वच्छ जल जीवोम

नदियों, दलदली भूमि, झील व तालाब आदि आंतरिक जलाशयों में पाये जाने वाले जैविक तंत्र को स्वच्छ जल जीवोम (Freshwater Biome) के अंतर्गत शामिल किया जाता है। इन जीवोमों में अत्यधिक विविधता पायी जाती है क्योंकि ये न केवल स्थानीय मृदा एवं जलवायविक दशाओं, बल्कि अपने चारों ओर के स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र से भी प्रभावित होते हैं। चूँकि जलीय जीवोमों (विशेष रूप से झील एवं तालाब) की सर्वप्रमुख विशेषता स्थिर जल है और उनके जल में लम्बवत् रूप से प्रकाश, तापमान, पोषण एवं जीवों की दृष्टि से स्थिरीकरण पाया जाता है।

स्थिर जलीय जीवोम के जीवों को भी पिलैजिक और नितलीय (Benthic) वर्गों में विभाजित किया जाता है। वेलांचल क्षेत्र (Littoral Zone) (जलाशय में सबसे ऊपर स्थित) में जड़युक्त पौधे पाये जाते हैं, जबकि सरोवरी क्षेत्र (Limnetic Zone) में पिलैजिक जीव पाये जाते हैं। ये पिलैजिक जीव प्लैंकटन और नेक्टन के रूप में होते हैं। पादप प्लैंकटन के अंतर्गत डायटम, डेस्मिड और शैवाल शामिल हैं, जो जलीय आहार शृंखला का आधार बनाते हैं। जैव प्लैंकटन अति लघु जीव हैं, जो पादप प्लैंकटन से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। नेक्टन के अंतर्गत मछलियाँ शामिल हैं, जो पादप व जैव प्लैंकटन से भोजन प्राप्त करती हैं। नितल पर पाए जाने वाले जीवों में मुख्यत: बैक्टीरिया, घोंघा, कीट आदि शामिल हैं।

स्मरणीय है कि झील या तालाब तंत्र उच्च उत्पादक होते हैं तथा कई मामलों में उनकी उत्पादकता अजैविक पोषकों; जैसे- फॉस्फोरस की उपलब्धता द्वारा सीमित हो जाती है। उत्पादकता के आधार पर झीलों को विशेषकर शीतोष्ण कटिबंधीय झीलों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है:-

- अल्पपोषी (Oligotrophic)
- सुपोषी (Eutrophic)

अल्पपोषी (Oligotrophic)

इस प्रकार की झीलों की गहरायी अधिक होती है। किन्तु इनमें अपेक्षाकृत पोषक तत्त्व का आगम निम्न होता है। अत्यधिक गहरा होने के कारण लंबवत् संचरण अपर्याप्त होता है, फलत: उत्पादकता में कमी हो जाती है।

सुपोषी (Eutrophic)

ऐसी झीलें अपेक्षाकृत छिछली एवं उच्च उत्पादक होती हैं। इनमें प्रकाश झील के तली तक पहुँचने में सक्षम होता है। साथ ही, मौसम में परिवर्तन के साथ जल का लम्बवत् परिसंचरण खनिज पोषकों को धरातल तक वापस लाने में और ऑक्सीजन को गहराई तक ले जाने में सहायक होता है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र अनेक महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय कार्य संपादित करते हैं। उदाहरण के लिए, वे पोषकों के पुनर्चक्रण, जल के शोधन, बाढ़ को क्षीण करने, भौमजल तथा वन्यजीव के लिए आवास प्रदान करने में सहायक होते हैं। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र मानव के मनोरंजन के साथ-साथ पर्यटन उद्योग, विशेषकर तटीय प्रदेशों में काफी महत्त्वपूर्ण हैं। जलीय तंत्र में किसी प्रकार के बाह्य दबाव के कारण असंतुलन उत्पन्न होने का खतरा पैदा हो जाता है। ये दबाव भौतिक, रासायनिक और जैविक विधियों से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के ही परिणाम होते हैं। भौतिक परिवर्तनों से तात्पर्य जल के तापमान, प्रवाह एवं प्रकाश की उपलब्धता में परिवर्तन से है, जबकि रासायनिक परिवर्तनों में जैव उद्दीपक पोषकों की प्राप्ति दर में कमी, ऑक्सीजन, उपभोक्ता पदार्थों एवं विषाक्त पदार्थों की मात्रा में परिवर्तन शामिल होते हैं। जीव-वैज्ञानिक परिवर्तनों में असामान्य विदेशी प्रजातियों की घुसपैठ तथा मानवीय हस्तक्षेप में वृद्धि को शामिल किया जाता है। अत: असामान्यताओं को नियंत्रित करना और जलीय पर्यावरण व पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन की रक्षा करना समय की मांग है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

- क्लीमेन्ट एवं शेल्फर्ड ने 1939 में जीवोम अथवा बायोम की संकल्पना प्रस्तुत की।
- बायोम के अंतर्गत महाद्वीप के उन सभी भागों के समस्त पादपों तथा प्राणियों को सम्मिलित किया जाता है जिनकी सामान्य विशेषताएं उस भू-भाग में प्राय: समान होती हैं।
- दो या दो से अधिक विविध (घास स्थल व वन क्षेत्र) समुदायों के मध्य संक्रमण क्षेत्र को इकोटोन (Ecotone) कहते हैं।
- पृथ्वी पर वनस्पतियों तथा जीवों-जंतुओं सहित सभी प्रमुख पारिस्थितिक तंत्र बायोम कहलाते हैं।
- प्रवाल एक की-स्टोन प्रजाति है।

अध्याय
3

पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकी तंत्र
Ecology and Ecosystem

पारिस्थितिकी (Ecology) वह विज्ञान है जिसके अंतर्गत समस्त जीवों तथा भौतिक पर्यावरण के मध्य अंतर्संबंधों का अध्ययन एवं विभिन्न जीवों के मध्य पारस्परिक अंतर्संबंधों का अध्ययन किया जाता है। सामान्य अर्थों में देखें तो पारिस्थितिकी जीव विज्ञान की एक शाखा है, जिसमें जीव समुदायों की उसके वातावरण के साथ पारस्परिक अन्तर्क्रियाओं का अन्वेषण किया जाता है। प्रत्येक जन्तु या वनस्पति एक निश्चित वातावरण में रहते हैं, पारिस्थितिकी में इन्हीं तथ्यों का अन्वेषण करते हैं कि जीव आपस में और पर्यावरण के साथ किस तरह क्रिया करते हैं और पृथ्वी पर जीवन की जटिल संरचना का पता लगाते हैं।

पारिस्थितिकी दो शब्दों से मिलकर बना है, जोकि ग्रीक शब्द "Oekologie" से लिया गया है यहाँ 'Oekos' का अर्थ "घेराव या आस-पास का क्षेत्र" तथा 'Logs' का अर्थ एक "पूरे पारिस्थितिकी का अध्ययन" करना होता है। 'पारिस्थितिकी' (इकोलॉजी) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जर्मन जीव विज्ञानी अर्नेस्ट हेकल ने 1869 ई. में किया था। पारिस्थितिकी को सर्वप्रथम परिभाषित करने और विस्तृत अध्ययन करने का श्रेय भी अर्नेस्ट हेकल को ही प्राप्त है।

अर्नेस्ट हेकल के अनुसार "वातावरण और जीव-समुदाय के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं।" बीसवीं सदी के आरंभ में मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच संबंधों पर विशद् अध्ययन प्रारम्भ हुआ। एक साथ कई विषयों में इस ओर ध्यान दिया गया। परिणामस्वरूप, मानव पारिस्थितिकी की संकल्पना सामने आयी।

ई.पी.ओडम के अनुसार "पारिस्थितिकी जीवों अथवा जीव समूहों तथा पर्यावरण के बीच संबंधों अथवा जीवित जीवों एवं उनके पर्यावरणों के बीच अंतर्संबंधों का विज्ञान है।"

पारिस्थितिकी के नियम

प्रकृति के विभिन्न क्रियाकलापों तथा अवयवों के अध्ययनोपरांत बहुत-से पर्यावरणविदों ने पारिस्थितिकी के कुछ नियम प्रतिपादित किए हैं। पारिस्थितिकी की क्रियाशीलता के संदर्भ में बैरी कोमोनर (Barry Commonor) द्वारा प्रतिपादित नियम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कोमोनर ने पारिस्थितिकी के चार नियम बताए हैं, जो इस प्रकार हैं-

पारिस्थितिकी का प्रथम नियम

प्रथम नियम के अनुसार, पारिस्थितिकी तंत्र में प्रत्येक वस्तु एक-दूसरे से संबंधित होती है। उनमें यह अंतर्संबंध पदार्थ अथवा ऊर्जा के माध्यम से स्थापित होता है। पदार्थ अर्थात् कोई भी ऐसी वस्तु, जो स्थान घेरती है और जिसमें द्रव्यमान होता है, से ही जैविक-अजैविक तत्त्वों की रचना होती है।

सभी जीवित पदार्थ ऊर्जा के द्वारा ही स्वयं या अन्य वस्तुओं को गति प्रदान करते हैं। किसी एक पदार्थ अथवा ऊर्जा की मात्रा में कमी या वृद्धि का प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्र के अन्य पदार्थों पर अवश्य पड़ता है। सभी पारितंत्रों में स्वयं को स्थिर करने की प्रवृत्ति होती है। यद्यपि वे अपने मार्ग से भटक जाते हैं, तो स्थिरकारी संबंधों के तंत्र इस प्रकार क्रियाशील हो जाते हैं कि वे तंत्र पुनः अपनी स्थिरता की ओर अग्रसर हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप शैवालों की तेजी से वृद्धि होती है, इसके फलस्वरूप तंत्र में अजैविक पोषकों की आपूर्ति घट जाती है। इससे शैवाल एवं पोषण चक्र में असंतुलन पैदा होता है।

पारिस्थितिकी का द्वितीय नियम

कोमोनर के द्वितीय नियम के अनुसार, पदार्थ कभी विनष्ट नहीं होते हैं अर्थात् कोई भी वस्तु निरर्थक या बेकार नहीं है। प्रत्येक प्राकृतिक तंत्र में, यदि किसी एक तंत्र द्वारा कोई वस्तु निकाल दी जाती है, तो उसी वस्तु को दूसरा तंत्र अपने भोजन के लिए प्रयोग कर लेता है। प्राणी कार्बन-डाईऑक्साइड को अपने श्वसन के अपशिष्ट के रूप में त्याग देता है, परंतु यही कार्बन डाईऑक्साइड हरित पादपों के लिए आवश्यक पोषक तत्त्व बन जाता है।

पारिस्थितिकी का तृतीय नियम

यह नियम काफी हद तक अर्थशास्त्र के इस नियम से मिलता-जुलता है कि किसी भी प्रकार के लाभ की प्राप्ति हेतु कुछ लागत देनी ही होती है। चूँकि पारिस्थितिकी तंत्र का प्रत्येक तत्त्व एक-दूसरे से संबंधित है, अत: किसी भी प्रकार का लाभ प्राप्त करने के लिए पारितंत्र में कुछ न कुछ अवश्य प्रदान करना होगा, जैसे- ऊर्जा प्राप्ति के लिए ऊर्जा लगानी ही पड़ती है।

पारिस्थितिकी का चतुर्थ नियम

इस नियम के अनुसार, पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक व्यवस्था का पोषक है। इस तंत्र में मानव द्वारा किया गया कोई भी परिवर्तन उसके अस्तित्व के लिए विनाशकारी साबित हो सकता है। मानव अपनी बौद्धिक क्षमता द्वारा जितना परिवर्तन करता है, उसके दूरगामी परिणामों को समझने में वह सक्षम नहीं होता। दूसरी ओर, प्रकृति संपूर्ण तंत्र के समस्त पहलुओं को एक साथ संतुलित करती है और इसे दीर्घकाल तक बनाए रखने में सक्षम होती है।

तथ्य सार

प्रथम नियम

प्रत्येक वस्तु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक वस्तु से संबंधित है, अत: हम सभी इसमें साथ-साथ हैं। (Everything is Connected to Everything)

द्वितीय नियम

प्रत्येक वस्तु को कहीं जाना ही है। (Everything must go some where)

तृतीय नियम

यहाँ कुछ भी मुफ्त नहीं है। (There is no such things as a free lunch)

चतुर्थ नियम

प्रकृति सर्वोत्तम जानती है। (Nature Knows Best)

पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)

पारिस्थितिकी तंत्र या पारितंत्र (इकोसिस्टम) एक विशेष और पहचान योग्य भू-दृश्य वाला क्षेत्र होता है, जैसे- वन, रेगिस्तान, चारागाह, दलदल या तटीय क्षेत्र आदि। पारितंत्र के अंतर्गत एक क्षेत्र विशेष के सभी जीवधारी भौतिक पर्यावरण (अजैविक घटक) के साथ अंत:क्रिया कर एक संपूर्ण जैविक इकाई का निर्माण करते हैं। इस प्रकार का एक तंत्र, जिसमें एक समुदाय के समस्त जीव व उनसे अंत:क्रिया करने वाले संबद्ध अजैविक घटक शामिल हों, पारिस्थितिकी तंत्र या पारितंत्र कहलाता है। प्रकृति में पारिस्थितिक तंत्र को दो प्रमुख वर्गों- स्थलीय तथा जलीय तंत्रों में वर्गीकृत किया जाता है। वन, घासस्थल, मरुस्थल आदि स्थलीय पारितंत्र के उदाहरण हैं, जबकि तालाब, झील, झरने तथा समुद्र आदि जलीय पारितंत्र के उदाहरण हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ए.जी. टांसले ने सन् 1935 ई. में प्रतिपादित किया था। टांसले के अनुसार, किसी भी स्थान के जैविक समुदाय के जीवों तथा उनके चारों ओर पाये जाने वाले अजीवीय वातावरण में पारस्परिक संबंध होता है और ये दोनों एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। समुदायों के जीवों की रचना, कार्य व उनके वातावरण के पारस्परिक संबंध को पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्गत रखते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र जैवमंडल का आधार है। इसमें दिए गये क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ अजैविक घटकों (पृथ्वी, मौसम, मिट्टी, जलवायु, सूर्य, वातावरण) के साथ अंत:क्रिया करने वाले सभी जैविक घटक सम्मिलित हैं। प्रत्येक जैव-समुदाय के सदस्य निरंतर एक-दूसरे से अनुक्रिया करते हैं। इसके माध्यम से आवश्यक ऊर्जा एक पोषण स्तर से दूसरे स्तर तक स्थानान्तरित होकर समुदाय के सभी सदस्यों की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति करती है। परन्तु अनुक्रियाओं की शृंखला मात्र जीवित सदस्यों तक सीमित नहीं रहती है। वास्तव में ऊर्जा और आवश्यक खनिज पदार्थों का निरंतर प्रवाह ही सामुदायिक जीवन-चक्र को गतिशील रखता है। इसकी निरंतरता जैव-समुदायों को पारस्परिक अनुक्रियाओं के साथ-साथ अजैविक पर्यावरण से क्रियाशील आदान-प्रदान के लिए भी आवश्यक है। स्वपोषी, पर्णहरित वनस्पतियाँ अजैविक वातावरण के विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक कारकों; जैसे- सौर ऊर्जा, कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस तथा अन्य खनिज पदार्थों का संश्लेषण करके कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा आदि कार्बनिक पदार्थों का उत्पादन करती हैं। यही पदार्थ भोजन के द्वारा विभिन्न उपभोक्ताओं के शरीर में ऊर्जा एवं खनिज पदार्थों के रूप में प्रवाहित होते हैं। उत्पादक एवं उपभोक्ता के जीवन का अंत होने पर सूक्ष्मजीवी बैक्टीरिया एवं कवक इनका विघटन करके विभिन्न खनिज पदार्थों को भूमि के मूल सुरक्षित भण्डार

में, ऊर्जा तथा रासायनिक तत्वों को वातावरण में पुन: मिला देते हैं। इस प्रकार ऊर्जा खनिज पदार्थों का चक्र पूरा होता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताएँ

- पारिस्थितिकी तंत्र एक कार्यशील क्षेत्रीय इकाई होती है, जो क्षेत्र विशेष के सभी जीवधारियों एवं उनके भौतिक पर्यावरण के सकल योग का प्रतिनिधित्व करती है।
- पारिस्थितिकी तंत्र जीवमंडल में एक सुनिश्चित क्षेत्र धारण करता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र एक खुला तंत्र (Open System) होता है, जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का आगम (Input) तथा बहिर्गमन (Output) होता है।
- ऊर्जा, जैविक तथा भौतिक संघटकों के मध्य जटिल पारस्परिक अंत: क्रियाएँ होती हैं, साथ ही साथ विभिन्न जीवधारियों में भी पारस्परिक क्रियाएँ होती हैं।
- जब तक एक पारिस्थितिकी तंत्र के एक या अधिक नियंत्रक कारकों में अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती, तब तक पारिस्थितिकी तंत्र अपेक्षाकृत स्थिर समस्थानिक होता है।
- पारितंत्र में पदार्थों का गमन चक्रीय रूप में संपादित होता है। पदार्थों का यह चक्रण कई परस्पर संबंधित चक्रों; जैसे- जल-चक्र, कार्बन-चक्र, नाइट्रोजन-चक्र, ऑक्सीजन-चक्र आदि से संपादित होता है।
- इन चक्रों को सम्मिलित रूप से जैव भू-रसायन चक्र (Bio Geochemical Cycle) कहते हैं।
- पारिस्थितिकी तंत्र में क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से विविधता होती है। यह अति लघु विस्तार वाला हो सकता है, जैसे- किसी वृक्ष का कोई एक भाग जड़, तना एवं पत्तियों सहित शाखाएँ या वृहत्तम आकार वाला हो सकता है; जैसे- समस्त जीवमंडल।
- पारिस्थितिकी तंत्र संरचित तथा सुसंगठित तंत्र होता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र की निजी उत्पादकता होती है। उत्पादकता किसी क्षेत्र की प्रति इकाई में जैविक पदार्थों की वृद्धि दर की द्योतक होती है। हरे पौधे सौर्यिक प्रकाश, जल तथा वायुमण्डलीय कार्बन डाईऑक्साइड की सहायता से प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपना भोजन (कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं, इसे ऊर्जा कहा जाता है) बनाते हैं।
- अत: पारिस्थितिकी रासायनिक तंत्र में पौधे स्वपोषित प्रकाश संश्लेषी प्राथमिक उत्पादक होते हैं तथा खाद्य शृंखला में प्रथम पोषण स्तर की रचना करते हैं। जन्तु उपभोक्ता हैं तथा आहार श्रृंखला के द्वितीय (शाकाहारी जीव), तृतीय (मांसाहारी जन्तु) तथा चतुर्थ (सर्वाहारी जन्तु) पोषण स्तर का निर्माण करते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र के घटक

पारिस्थितिकी तंत्र को मौलिक रूप से दो घटकों अजैविक तथा जैविक में विभाजित किया जाता है। भौगोलिक, जलवायवीय (Climatic) और मिट्टी संबंधी विशेषताएँ उसके अजैविक घटक (Abiotic Components) होते हैं। ये विशेषताएँ ऐसी दशाएँ उत्पन्न करती हैं, जो उन पेड़-पौधों और प्राणियों के समुदाय को सहारा देती हैं, जिनको उन दशाओं में विकास की प्रक्रिया ने पैदा किया है। पारितंत्र के सजीव/जीवित भाग को उसका जैविक घटक (Biotic Components) कहते हैं। इसे विशद् रूप में निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है:-

जैविक घटक (Biotic Components)

इसके अंतर्गत उत्पादक, उपभोक्ता तथा अपघटक आते हैं। उत्पादक स्वपोषी होते हैं, जोकि साधारणतया क्लोरोफिलयुक्त जीव होते हैं, ये सामान्य अकार्बनिक अजैविक पदार्थों को सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में संचित कर अपना भोजन बनाते हैं। स्थलीय तथा जलीय आवासों में विभिन्न प्रकार के प्रकाश संश्लेषी जीवाणु, रसायन संश्लेषी जीवाणु तथा प्रकाश संश्लेषी प्रोटोजोआ भी कार्बनिक पदार्थों का उत्पादन करते हैं। स्थलीय पारितंत्र में स्वपोषी प्राय: जड़युक्त शाक, झाड़ी तथा वृक्ष शामिल हैं, जबकि जलीय पारितंत्र में पादप प्लवक (Phytoplankton) नामक प्लवी पौधे प्रमुख उत्पादक होते हैं।

किसी पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक घटकों में समस्त वनस्पति एवं प्राणी तंत्र को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

- उत्पादक (Producers)
- उपभोक्ता (Consumers)

- विघटक/अपघटक (Decomposers)

उत्पादक (Producers):- उत्पादक के अंतर्गत वे सभी जीव या हरे पौधे आते हैं, जो स्वयं अपना भोजन बनाने में सक्षम होते हैं, स्वपोषी या प्राथमिक उत्पादक कहलाते हैं। हरे पादपों में क्लोरोफिल नामक पदार्थ उनकी कोशिका के लवकों (Plastid) में उपस्थित रहता है। क्लोरोफिल के माध्यम से पौधे प्रकाश को संश्लेषित करके कार्बन डाईऑक्साइड व जल की सहायता से अपना भोजन, ग्लूकोज अणु (शर्करा) के रूप में निर्मित करके संचित करते जाते हैं। हरे पौधे, हरे शैवाल, हरे जीवाणु, बायोफाइटा, टेरिडोफाइटा, जिम्नोस्पर्म आदि प्राथमिक उत्पादकों में शामिल हैं।

उपभोक्ता (Consumers):- ऐसे जीवधारी, जो स्वयं अपना भोजन बनाने में सक्षम नहीं हैं और पोषण के लिए अन्य जीवों पर निर्भर होते हैं, परपोषी जीव या उपभोक्ता कहलाते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्गत उपभोक्ताओं को भी तीन श्रेणियों में बाँटकर देखा जा सकता है:-

- **प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers):-** इसके अंतर्गत वे जीवधारी आते हैं, जो पूर्णत: शाकाहारी जीव (Herbivores) होते हैं। ये प्राथमिक उत्पादकों अथवा हरे पादपों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। ये प्राय: छोटे अथवा बड़े स्थलीय (Terrestrial) अथवा जलीय (Aquatic) तंत्रों में पाए जाते हैं। कुछ समुद्री जीव-जन्तु, खरगोश, बकरी, हिरण, जिराफ, गाय आदि सामान्य प्राथमिक उपभोक्ता हैं।
- **द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers):-** वे सभी जन्तु, जो भोजन के लिए प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं पर निर्भर होते हैं, उन्हें द्वितीयक उपभोक्ता की श्रेणी में रखते हैं। दूसरे शब्दों में कहें, तो ऐसे जन्तु माँसाहारी (Carnivores) अथवा सर्वाहारी (Omnivores) होते हैं। इसके अंतर्गत पक्षी, साँप, लोमड़ी, कुत्ता और बिल्ली आदि आते हैं।
- **तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers):-** ये सर्वोच्च श्रेणी के माँसाहारी जीव हैं। ये द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ताओं को अपना आहार बनाते हैं। इसके अंतर्गत बाज, गिद्ध, चीता व शेर आदि आते हैं।

विघटक या अपघटक (Decomposers):- ऐसे जैविक घटक, जो पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक तथा उपभोक्ता की मृत्यु के पश्चात् उनके शरीर का अपघटन करते हैं, अपघटनकर्ता कहलाते हैं। ऐसे मृत जीवों के अपघटन के लिए कुछ विशेष कवक तथा जीवाणु निरंतर क्रियाशील रहते हैं जिन्हें अपघटक या मृतपोषी कहा जाता है। अत्यंत सूक्ष्म आकार के इन अपघटकों की भूमिका किसी पारिस्थितिकी तंत्र में अत्यधिक महत्त्व रखती है। कुछ अपघटकों को अपमार्जक भी कहते हैं। कुछ प्राणी; जैसे- केंचुए तथा अन्य सूक्ष्म जीव एवं अर्थ्रोपोडा अपरद भोजी (Detritus feeders) भी होते हैं और उन्हें अपरदभक्षी (Detrivores) भी कहा जाता है। इनका योगदान जैविक पदार्थ के अपघटन में भी होता है।

Note

मृत पौधों के भाग एवं जंतुओं के अवशेषों को अपरद कहते हैं।

अजैविक घटक (Abiotic Components)

पारिस्थितिकी तंत्र में अजैविक घटकों के अंतर्गत विभिन्न भौतिक तथा रासायनिक परिघटनाएँ एवं प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। प्रत्येक अजैविक कारक अन्य कारकों से प्रभावित होता है तथा साथ ही अन्य कारकों को भी प्रभावित करता है अर्थात् ऐसे निर्जीव पदार्थ, जो जीवों को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, मृदा, वायु, जल, कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थ आदि। अजैविक घटक इस बात को सुनिश्चित करते हैं कि जीव पर्यावरण में कहाँ और किस रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए है अर्थात् कोई जीव अपने पर्यावरण में कहाँ और कितने सुचारू रूप से रह पाता है, इसके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व अजैविक कारक ही होते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत अजैविक घटकों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

भौतिक कारक

तापमान, प्रकाश, वायु, आर्द्रता, मृदा, धारा एवं वर्षा आदि, जिनका निर्माण सौर ऊर्जा के जैविक और अजैविक तत्त्वों के संसर्ग से होता है, प्रमुख भौतिक कारक हैं। ये सभी जीवधारियों को जीवनपर्यन्त प्रभावित करते हैं और उनकी वृद्धि, विकास आदि क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

तापमान (Temperature):- पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्गत तापमान एक महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय अजैविक कारक है। पृथ्वी पर विद्यमान सभी जीव तापीय वातावरण में रहते हैं। यह ऊष्मा और तापक्रम के रूप में निरूपित होता है। यह कारक प्राणियों की उपापचयी व जैविक क्रियाओं को प्रभावित करता है।

पौधों तथा प्राणियों की वृद्धि व वितरण इनसे प्रभावित होता है। तापमान सीमाकारी कारक (Limiting Factor) का भी कार्य करता है। प्राणियों में प्रजनन, भ्रूणीय परिवर्धन, प्रवसन तथा असंख्य व्यावहारिक क्रियाएँ इससे प्रभावित होती हैं। तापमान के अन्य अजैविक कारकों (जैसे- आर्द्रता, वायु आदि) के साथ होने वाली अंत:क्रिया के कारण प्राणी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं।

जोर्डन के नियम के अनुसार, तापमान द्वारा मछलियों की प्रजातियों में कशेरूकाओं की संख्या पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी मछलियाँ, जो कम तापमान युक्त जल में निवास करती हैं, उनमें कशेरूकाओं की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है, जबकि गर्म जल स्रोतों में पाई जाने वाली मछलियों में कशेरूकाओं की संख्या कम होती है।

प्रकाश (Light):- प्रकाश द्वारा संश्लेषित ऊर्जा ही सभी जीवधारियों के जीवन का मूलाधार है। वस्तुत: हमें आँख से दिखने वाली बैंगनी, नीली, आसमानी, हरी, पीली, नारंगी तथा लाल रंगों की किरणों को ही प्रकाश कहा जाता है। लेकिन सूर्य के प्रकाश से अन्य बहुत सी किरणें नि:सृत होती हैं; जैसे- अल्ट्रावाइलेट (पराबैंगनी) किरणें, कॉस्मिक किरणें (Cosmic Rays), अवरक्त किरणें (इन्फ्रारेड रेज), रेडियो तरंगें (Radio Waves) आदि भी सूर्य से पृथ्वी पर निरंतर नि:सृत होती हैं।

सभी जीवों तथा वनस्पतियों के विकास के लिए प्रकाश एक अति महत्त्वपूर्ण घटक है क्योंकि पादपों के भोजन के लिए प्रकाश-संश्लेषण एक अनिवार्य घटक है। भोजन निर्माण की उन उपापचयी क्रियाओं के लिए प्रकाश एक आवश्यक कारक है। इसी प्रकार विभिन्न जन्तुओं में एंजाइम्स की कार्यविधियों, लवणों की घुलनशीलता भी बढ़ जाती है। गैसों की घुलनशीलता पर प्रकाश की तीव्रता का विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्राणियों में वर्णकों का उत्पादन भी उपापचय पर प्रकाश के प्रभाव का उदाहरण है।

प्रकृति में कई भौतिक आवर्तिताएँ प्रकाश से संबंधित होती हैं। प्रकाश एवं अँधेरे की दैनिक आवर्तिताएँ जल एवं थल पर पादपों की अनेक क्रियाओं को नियंत्रित करती हैं। दैनिक अवधि भी कई क्रियाओं को नियंत्रित करती है। दैनिक अवधि का नियंत्रणकारी प्रभाव 'दीप्तिकालिता' कहलाता है।

आर्द्रता (Humidity):- आर्द्रता का स्थानीय जन्तु तथा वनस्पतियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उभयचर प्राणी (मच्छर, तिलचट्टा), भूमिगत अकशेरूकीय जीवों की उपस्थिति व अनुपस्थिति पर आर्द्रता का अत्यधिक प्रभाव होता है। बहुत-से प्राणियों में आर्द्रता के लिए स्पष्ट सहनशीलता (आर्द्रताग्राहिता) भी पाई जाती है, जैसे- सिल्वर फिश या रजत मीन के प्रजनन के लिए 80-90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है।

जल (Water):- समस्त जीवमंडल के जीवधारियों के जीवन व विकास के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जल का असीमित महत्त्व है। जल के अभाव में पारिस्थितिकी तंत्र की क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। जल की उपलब्धता वनस्पतियों, पादपों आदि के उद्‌भव तथा विकास के लिए अनिवार्य घटक है। स्थलीय पादपों का वितरण प्रत्यक्ष रूप से जल की उपलब्धता पर निर्भर करता है। विशेष प्रकार की वनस्पति विशेष प्रकार के जंतुओं का संभरण करती है। इसलिए स्थलीय जन्तुओं के वितरण में भी अप्रत्यक्ष रूप से जल की उपलब्धता का महत्त्व होता है। पादपों को उपलब्ध जल का परिमाण केवल वर्षा के मान पर ही निर्भर नहीं करता, अपितु मृदा की जलधारिता पर भी निर्भर करता है। मरुस्थलीय क्षेत्र में जल की कमी के कारण जंतुओं और पौधों में जल संरक्षण के लिए अनेकों शारीरिक परिवर्तन हो जाते हैं, जिन्हें 'मरुस्थलीय अनुकूलन' कहते हैं।

मृदा (Soil):- 'मृदा' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'सोलम' (Solam) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है- पृथ्वी का वह पदार्थ, जिसमें पादप वृद्धि करते हैं। मृदा पौधों में पोषक पदार्थों तथा पानी की आपूर्ति के स्रोत के अलावा, खाद्य शृंखला का भी महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

दाब (Pressure):- ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ वायुमण्डलीय दाब का 'घटना' इसका एक प्रमुख अवयव है। दाब का असंतुलन प्राणियों के विकास को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है। ऊँचाई के साथ दाब में होने वाला ह्रास अकशेरूकीय जीवों, पादपों तथा अन्य निम्न श्रेणी के कशेरूकीय जीवों के लिए अधिक हानिकारक नहीं होता है, जबकि समतापी प्राणियों में ऊँचाई पर कम दाब उपलब्ध ऑक्सीजन के परिमाण में कमी कर देता है, जो उनके श्वसन में बाधक होती है।

Note

पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के National Wildlife Action Plan (2002-2016) में राज्य सरकारों के लिए राष्ट्रीय उद्यानों एवं वन्य जीव अभ्यारण्यों की सीमाओं के निकटवर्ती 10 किमी. क्षेत्र को **पारिस्थितिकी संवेदी क्षेत्र घोषित** करना अनिवार्य कर दिया गया था। यह Section 3(v) of Environment (Protection) Act, 1986 के अंतर्गत होना था। इसका उद्देश्य एक संक्रमण क्षेत्र बनाकर इन उद्यानों एवं अभ्यारण्यों को सुरक्षा प्रदान करना था। इसमें खनन, परिवहन तथा औद्योगिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाया गया। परंतु इस क्षेत्र में स्थानीय लोगों द्वारा पहले से चली आ रही कृषि एवं उद्यान कृषि को अनुमति दी गई।

स्मरणीय है कि जल में गहराई के साथ दाब में अत्यधिक वृद्धि होती है। जलीय वातावरण में दाब परिवर्तन के प्रभाव वायु गुहिकाओं (Air Cavities) युक्त एवं वायु गुहिकाओं रहित प्राणियों में अलग-अलग होते हैं। कई समुद्री प्राणियों में वायु गुहिकाओं का अभाव होता है, किन्तु इनके वितरण की निश्चित व लम्बवत् सीमाएँ (Vertical Limits) होती हैं। वस्तुत: जलीय परिसर की ये सीमाएँ सम्भवत: दाब के कारण ही नहीं, बल्कि तापक्रम, प्रकाश या भोजन जैसे अन्य कारकों के कारण होती हैं। दाब में अत्यधिक परिवर्तनों से कुछ कार्यिकीय क्रियाओं की दर बदल जाती है। अकशेरूकीय जीवों, वाताशय रहित (Swimbladder less) मछलियों और जीवाणुओं को जब कई सौ एट्मोस्फिरिक दाब कोष्ठों (Pressure Chamber) में रखा जाता है, तो वे निष्क्रिय हो जाते हैं या मर जाते हैं। यही कारण है कि महासागर की गहराई में जीवन की प्रगति धीमी होती है।

रासायनिक कारक

वायु के साधारण तत्त्वों में लगभग 20% ऑक्सीजन, 79% नाइट्रोजन तथा 0.03% कार्बन डाईऑक्साइड एवं शेष निष्क्रिय गैसें होती हैं। इनके अतिरिक्त मौसम के अनुसार जलवाष्प भी पाये जाते हैं। ऑक्सीजन जीवधारियों के लिए अति आवश्यक गैस है। स्थलीय एवं जलीय प्राणियों का श्वसन ऑक्सीजन से होता है। यही ऑक्सीजन आन्तरिक श्वसन में कार्बोहाईड्रेट या शर्करा का उपापचय करके जैविक कार्यों के लिए ऊर्जा (ATP) उत्पन्न करती है। ऑक्सीजन स्थलीय और जलीय जन्तुओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण सीमांतकारी कारक है।

कार्बन डाईऑक्साइड की सहायता से पौधे प्रकाश-संश्लेषण द्वारा अपना भोजन बनाते हैं। इन पौधों को खाकर जन्तु अपनी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, परन्तु वायु में कार्बन डाईऑक्साइड की अधिकता जंतुओं के लिए घातक सिद्ध होती है। जल में अत्यधिक घुलनशील होने के कारण यह जल में मिलकर कार्बोनेट बनाती है। ये यौगिक समुद्र में कार्बन डाईऑक्साइड के सुरक्षित भण्डार का काम करते हैं, परन्तु इनकी अधिकता के कारण समुद्री मछलियों की मृत्यु हो जाती है।

जल चक्र (The Water Cycle)

जल जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। किसी जीव के शारीरिक-भार का औसतन 70 प्रतिशत भाग जल से परिपूर्ण होता है। जल एक महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिकी कारक है, जिस पर पारितंत्र की संरचना एवं उसकी कार्य प्रणाली निर्भर करती है। इसके साथ ही जल पर अन्य तत्त्वों के चक्र भी निर्भर होते हैं क्योंकि विभिन्न चरणों में अन्य तत्त्वों का परिवहन माध्यम भी जल ही है और जीवों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले तत्त्वों के लिए भी यह एक विलायक माध्यम है।

जल चक्र के अंतर्गत पृथ्वी का अनंत जल एकत्र, शुद्ध और परिसंचरित होता है। वर्षा होने पर पानी भूमि पर बहता है और नदियों की ओर प्रवाहित होता है या सीधे समुद्र में जाकर गिरता है। धरती पर गिरने वाले जल का कुछ भाग रिसकर भूमि के भीतर चला जाता है और भूमिगत जल के जलवाही स्तरों को फिर से भरता है। भू-पृष्ठ का लगभग 75% भाग झीलों, नदियों, सागरों तथा महासागरों के रूप में जल से घिरा है। अकेले महासागरों में ही पृथ्वी के सम्पूर्ण जल का 95% भाग निहित है, शेष जल का एक बड़ा हिस्सा ध्रुवीय हिम तथा ग्लेशियरों के रूप में पाया जाता है।

जलीय चक्र का अनुक्रम:-

- महासागरों से वाष्पित होकर जल वायुमण्डल में जाता है।
- वायुमण्डल में जल का संघनन होता है तथा पुन: वर्षा एवं हिमपात के रूप में यह स्थल तक आता है।
- पुन: इसका एक भाग रिसकर भूमि के भीतर चला जाता है तथा इसे भूगर्भीय जल के रूप में प्राप्त किया जाता है।

स्मरणीय है कि यह चक्र सौर ऊर्जा द्वारा चलता रहता है, जिसमें लगभग 10×10^{20} g जल सम्मिलित होता है।

कार्बन चक्र (Carbon Cycle)

कार्बनिक यौगिकों में मौजूद कार्बन पारितंत्र के अजैविक और जैविक दोनों घटकों में पाया जाता है। कार्बन पौधों और प्राणियों, दोनों के ऊतकों का निर्माणकारी है। कार्बन-चक्र, कार्बन-डाईऑक्साइड गैस (CO_2) पर आधारित है। पृथ्वी के पारितंत्र में CO_2 को वायुमण्डल से और जलीय पारितंत्र में CO_2 को जल से निकाल दिया जाता है।

सूर्य के प्रकाश में पौधे अपनी पत्तियों के द्वारा वायुमंडल से कार्बन डाईऑक्साइड ग्रहण करते हैं। पौधे इस CO_2 को अपनी जड़ों के द्वारा भूमि से सोखे गए जल के साथ मिलाते हैं। सूर्य के प्रकाश में पौधे कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं, जिनमें कार्बन होता है। इस प्रक्रिया को प्रकाश-संश्लेषण कहा जाता है। पौधे अपनी वृद्धि और विकास के लिए इसी जटिल प्रक्रिया का प्रयोग करते हैं। इस प्रक्रिया में पौधे वायुमण्डल में ऑक्सीजन छोड़ते हैं, जिस पर प्राणियों की श्वसन क्रिया निर्भर रहती है। इसके अतिरिक्त, शाकभक्षी प्राणी भोजन के लिए

पौधों पर निर्भर हैं, जिससे उन्हें ऊर्जा मिलती है और उनकी वृद्धि होती है। श्वसन क्रिया में जीव-जंतु कार्बन डाईऑक्साइड मुक्त करते हैं। उनका अपशिष्ट (मल) मिट्टी में मिलकर स्थिर कार्बन को मिट्टी में लौटा देता है। जब पौधे और पशु मर जाते हैं, तो वे अपना कार्बन मिट्टी को वापस कर देते हैं और इस प्रकार कार्बन-चक्र पूरा हो जाता है।

पृथ्वी के वायुमंडल में ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड की प्रतिशतता नियंत्रित करने में पौधे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समान रूप में समुद्र भी कार्बन चक्र में एक विशिष्ट भूमिका निभाते हैं। कुछ समुद्री जातियाँ प्रकाश-संश्लेषण के दौरान कार्बन-डाईऑक्साइड अवशोषित करती हैं, कार्बन डाईऑक्साइड की कुछ मात्रा समुद्री जल में घुल जाती है (जिसके कारण इसे एक विशाल कार्बन स्टोरेज सिंक कहा जाता है) और अंत में कुछ कार्बन-डाईऑक्साइड समुद्री जल के साथ प्रतिक्रिया करके कार्बोनेट और बाई-कार्बोनेट के आयन बनाती है। गर्म समुद्री जल की अपेक्षा ठंडे समुद्री जल में कार्बन अधिक मात्रा में घुली रहती है, ठीक उसी तरह जैसे गर्म सॉफ्ट ड्रिंक की तुलना में ठंडे सॉफ्ट ड्रिंक में गैस अधिक समय तक रहती है। जैसे-जैसे समुद्र का तापमान बढ़ता है, इसमें CO_2 अवशोषित करने की क्षमता घटती जाती है और इस प्रकार वायुमंडल में अधिक CO_2 विमुक्त होती रहती है।

कार्बन-चक्र से यह सुनिश्चित होता है कि CO_2 का स्तर अनुकूल है, जिसके कारण जीवन के लिए वायुमंडल का तापमान सामान्य बना रहता है। यदि कार्बन-चक्र से कार्बन अधिक मात्रा में विलुप्त हो जाए, तो वायुमंडल बहुत ठंडा हो जाएगा और यदि वायुमंडल में कार्बन की मात्रा अधिक हो जाए तो वायुमंडल बहुत अधिक गर्म हो जाएगा।

जीवाश्म ईंधन: जैसे- कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस आदि भी कार्बन-चक्र के ही भाग हैं, जिनमें से बहुत वर्षों के बाद कार्बन यौगिक बाहर निकलते हैं। ये जीवाश्म ईंधन कार्बनिक यौगिक होते हैं, जो विघटित होने से पूर्व ही जमीन में दब गए थे और समय एवं भूविज्ञानीय प्रक्रियाओं के द्वारा जीवाश्म ईंधनों में परिवर्तित हो गये थे। जीवाश्म ईंधनों को जलाने पर उनके भीतर भंडारित कार्बन, कार्बन-डाईऑक्साइड के रूप में पुन: वायुमंडल में विमोचित हो जाती है। इस प्रकार कार्बन-चक्र में कार्बन-डाईऑक्साइड का मूलत: एक ओर वायुमंडल तथा जीवधारियों के मध्य तथा दूसरी ओर वायुमंडल तथा समुद्र के मध्य लगातार विनिमय होता रहता है। महासागरों में कार्बन-डाईऑक्साइड के विनिमय का तात्कालिक स्रोत जल की सतही परतों तक ही सीमित होता है।

जलवायु के वर्तमान मॉडलों से पता चलता है कि वायुमंडल में CO_2 की सांद्रता में वृद्धि हुई है। इसके कारण होने वाला परिवर्तन वर्तमान में विश्व के सम्मुख सबसे बड़ी पर्यावरणीय समस्या बनकर उभरा है।

नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle)

नाइट्रोजन एमीनो अम्लों, प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्लों, हॉर्मोनों, क्लोरोफिल एवं अनेक विटामिनों का एक संघटक है। वायुमंडल में मौजूद नाइट्रोजन (N_2) को पेड़-पौधे और जीव-जंतु पोषक तत्त्व के रूप में प्रत्यक्ष रूप में प्रयोग नहीं कर सकते। इसे अमोनिया (NH_3), नाइट्रेट या नाइट्राइट के यौगिक के रूप में बदलना जरूरी होता है।

यह क्रिया चार चरणों में पूरी होती है-

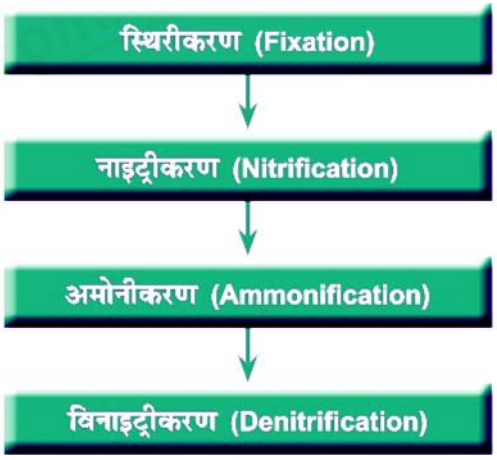

नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु कुछ पादप प्रजातियों: जैसे-फली, मटर और अल्फा-अल्फा की जड़ों की ग्रंथिकाओं में बढ़ते हैं और नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं। बाद में यह नाइट्रोजन अमोनिया में परिवर्तित हो जाती है, जिसका प्रयोग पौधे करते हैं, शेष बचे अप्रयुक्त अमोनिया का नाइट्रीकरण हो जाता है।

अमोनीकरण (Ammonification) के चरण में, विशेष जीवाणु और कवक अमोनिया भक्षण करते हैं और मृत सामग्री को कुछ यौगिकों; जैसे- अमोनिया और अमोनिया आयन युक्त जल में घुलनशील लवणों में परिवर्तित कर देते हैं। इन यौगिकों को पौधे अपनी वृद्धि के लिए सोख लेते हैं। इस प्रकार, पोषक तत्व पुन: चक्रित होकर पशुओं से पेड़-पौधों में पहुँच जाते हैं। अंत में विनाइट्रीकरण चरण के बाद नाइट्रोजन-चक्र पूरा हो जाता है।

स्मरणीय है कि मिट्टी में बसे नाइट्रोजन स्थिरीकारक जीवाणु और कवक पौधों को यह महत्त्वपूर्ण तत्व प्रदान करते हैं, जिसे यह नाइट्रेट के रूप में अवशोषित कर लेते हैं। ये नाइट्रेट पौधों के चयापचय (Metabolism) का भाग (Part) होते हैं, जो पौधों के लिए नए पादप-प्रोटीन बनाने में सहायता करते हैं। पादप या पौधों को आहार बनाने वाले प्राणी अपनी वृद्धि के लिए इसका प्रयोग करते हैं। जब माँसभक्षी जंतु शाकभक्षी जंतुओं को खाते हैं, तो यह नाइट्रोजन उनके शरीर में चला जाता है। इस प्रकार, हमारा जीवन भी मिट्टी में रहने वाले प्राणियों, पौधों और जीवाणुओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। जब हम खाद्य जाल (Food Web) के बारे में सोचते हैं, तो अक्सर हम स्तनपायी और अन्य बड़े जीवों के बारे में सोचते हैं, किंतु हमें यह भी समझना चाहिए कि छोटे-छोटे अनदेखे जीव-जन्तु, पेड़-पौधे और सूक्ष्मजीव भी पारितंत्र की कार्यप्रणाली में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

नाइट्रोजन के भंडार

- नाइट्रोजन का प्रमुख भण्डार वायुमंडल है, जिसके 78.7 प्रतिशत भाग में नाइट्रोजन गैस (N_2) मौजूद है।
- नाइट्रोजन मृदा के साथ-साथ झीलों, नदियों एवं महासागरों के निक्षेपों में भी आबद्ध रहता है।
- अल्प मात्रा में नाइट्रोजन धरातलीय जल एवं भौमजल में घुलित रहता है।

महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ

नाइट्रोजन पारिस्थितिकी तंत्र में प्रमुख रूप से बैक्टीरियाजन्य नाइट्रोजन स्थिरीकरण के द्वारा प्रवेश करता है-

- बैक्टीरिया अमोनीकरण के द्वारा जैविक नाइट्रोजन को विघटित कर देता है।
- नाइट्रीकरण में बैक्टीरिया अमोनिया को नाइट्रेट्स में परिवर्तित कर देता है।
- अमोनिया नाइट्रोसोमोनास एवं नाइट्रोकोकस नामक बैक्टीरिया के द्वारा सर्वप्रथम ऑक्सीकृत होकर नाइट्राइट में बदल जाता है। नाइट्राइट पुन: नाइट्रोबैक्टर नामक बैक्टीरिया की सहायता से पुन: ऑक्सीकृत होकर नाइट्रेट में बदल जाता है।
- स्मरणीय है कि नाइट्रीकारक बैक्टीरिया केमोऑटोट्रॉफ (Chemoautotrophs) कहलाते हैं।

इस प्रकार से निर्मित नाइट्रेट पौधों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और पत्तियों तक पहुँचाया जाता है। पत्तियों में यह अपचयित (Reduced) होकर अमोनिया बन जाता है, जो अंत में एमीनो अम्लों के एमीनो समूह का निर्माण करता है। मृदा में मौजूद नाइट्रेट भी अपचयित होकर नाइट्रोजन में बदल जाता है। इस प्रक्रिया को विनाइट्रीकरण कहते हैं। विनाइट्रीकरण की प्रक्रिया को स्यूडोमोनास एवं थियोबेसिलस बैक्टीरिया के द्वारा सम्पादित किया जाता है।

ऑक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle)

पौधे श्वसन क्रिया के दौरान वायुमण्डल से ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और वे प्रकाश-संश्लेषण के दौरान वायुमण्डल को ऑक्सीजन लौटा देते हैं। स्थलीय जीव वायुमण्डल से तथा जलीय जीव जल से ऑक्सीजन प्राप्त करते हैं। प्रकाश-संश्लेषण के तहत उत्सर्जित ऑक्सीजन सूक्ष्म जीवों, पादपों व जंतुओं द्वारा श्वसन के उपयोग में लायी जाती है। सामान्यत: जितनी ऑक्सीजन उपयोग में लायी जाती है, लगभग उतनी ही वातावरण में उत्पन्न होती है। इस प्रकार इसकी मात्रा स्थिर बनी रहती है। ऑक्सीजन का निश्चित अनुपात बनाये रखने के लिए प्रकृति में निरंतर ऑक्सीजन-चक्र चलता रहता है।

फॉस्फोरस-चक्र (Phosphorus Cycle)

फॉस्फोरस तत्व न्यूक्लिक अम्ल, फॉस्फोलिपिड्स एवं अन्य ऊर्जा संग्राहक अणुओं का महत्त्वपूर्ण अवयव है। फॉस्फोरस-चक्र जैव-रासायनिक चक्र है, जो लिथोस्फियर, हाइड्रोस्फियर और जीवमंडल के माध्यम से फॉस्फोरस के चक्र का वर्णन करता है।

पौधे सीधे मृदा से या जल से प्रत्यक्ष रूप से फॉस्फोरस प्राप्त करते हैं। यदि मृदा में फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो, तो यह पौधों की वृद्धि के लिए एक सीमाकारी कारक होता है और इसे संतुलित करने के लिए मृदा में उर्वरक के रूप में बाहर से फॉस्फोरस डालना पड़ता है।

- फॉस्फेट का जीववैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एकमात्र अकार्बनिक रूप फॉस्फेट है, जिसे पौधे अवशोषित करते हैं और कार्बनिक यौगिकों को संश्लेषित करने में प्रयोग करते हैं।
- स्मरणीय है कि फॉस्फेट लवण जल में घुलनशील एकमात्र लवण है। फॉस्फोरस मृदा में बड़ी मात्रा में तथा महासागरों एवं जीवों में भी मौजूद रहता है।
- फॉस्फेट की कुछ मात्रा अवक्षालित होकर भौमजल में पहुँच जाती है तथा धरातलीय जल में घुलित फॉस्फेट समुद्र में पहुँच जाता है।
- बायोमास के वियोजन या उपभोक्ता के उत्सर्जन के द्वारा फॉस्फेट पुन: मिट्टी या जल में वापस चला जाता है।
- फॉस्फोरस जैविक झिल्ली, न्यूक्लिक अम्ल का एक मुख्य संघटक होता है। अनेक जीव-जंतुओं को भी अपने कवच, हड्डी एवं दांतों के निर्माण के लिए फॉस्फोरस की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है।
- फॉस्फोरस का प्राकृतिक भण्डार 'शैल' है, जिसमें यह फॉस्फेट के रूप में मौजूद होता है। जब चट्टानें अपक्षयित होती हैं, तो इस फॉस्फेट्स का बहुत छोटा हिस्सा मृदा घोल में घुल जाता है, जिसे पौधे अपनी जड़ों द्वारा अवशोषित कर लेते हैं। शाकाहारी एवं अन्य जीव-जंतु इस तत्त्व को पादपों से प्राप्त कर लेते हैं। अपशिष्ट उत्पाद एवं मृत जीव फॉस्फेट द्योतक बैक्टीरिया के द्वारा वियोजित होते जाते हैं, जिससे फॉस्फोरस अवमुक्त होता है।

पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह

ऊर्जा का चक्र पारितंत्र में ऊर्जा के प्रवाह पर आधारित होता है। पौधे सूर्य की ऊर्जा को वृद्धिमान नई वस्तुओं में बदल देते हैं, जिनमें पौधों के पत्ते, फूल, शाखाएँ, तने और जड़ें शामिल हैं। समस्त जीवन प्रक्रियाओं में जितनी भी ऊर्जा उपयोग में आती है, वह सौर ऊर्जा से प्राप्त होती है। सौर ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय होता है। इसका अर्थ यह है कि यदि सौर्यिक ऊर्जा प्रवाह अवरूद्ध हो जाये, तो पारितंत्र समाप्त हो जाएगा।

ऊर्जा का एक लगातार प्रवाह बना रहता है, जो सूर्य से प्रारम्भ होकर विविध जीवों से गुजरता हुआ अंतत: बाह्य अंतरिक्ष में पहुँच जाता है। यही प्रक्रिया पृथ्वी पर जीवन को संचालित करती है। गहरे सागरीय जल की तापीय पारिस्थितिकी के अपवाद को छोड़कर पृथ्वी पर विद्यमान समस्त ऊर्जा का प्राथमिक स्त्रोत सूर्यातप है, जो अनवरत् रूप से सूर्य से पृथ्वी की ओर विद्युत-चुम्बकीय तरंगों (Electromagnetic waves) के रूप में आ रहा है। इस प्रकाश के सहारे हरे पौधे, जिनकी कोशिकाओं में क्लोरोफिल होता है, बहुत ही विषम जैविक पदार्थ का निर्माण करते हैं, जैसे-कार्बोहाईड्रेट। इस प्रक्रिया को प्रकाश-संश्लेषण कहा जाता है, जिसे निम्नलिखित रासायनिक क्रिया में दर्शाया जाता है:-

$$6CO_2 + 12\,H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{सौर ऊर्जा}} C_6H_{12}O_6 + 6H_2O + 6O_2$$

रासायनिक ऊर्जा की कुल मात्रा पारिस्थितिकी तंत्र द्वारा निर्धारित की जाती है। अत: पादप ही पारिस्थितिकी तंत्र में प्राथमिक उत्पादक की भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक पारितंत्र में अनेक परस्पर संबद्ध व्यवस्थाएं होती हैं, जो मानव जीवन को प्रभावित करती हैं।

Note

पारिस्थितिकी तंत्र का एक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि इसके अंतर्गत जब भी ऊर्जा का एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में स्थानांतरण होता है, तब उसकी मात्रा में 10 प्रतिशत की कमी आ जाती है। यदि शाकाहारी 1000 KCal पादप ऊर्जा खपत करते हैं, तो उसमें लगभग 100 KCal. ही शाकाहारी के ऊतकों में परिवर्तित, 10 KCal प्रथम स्तर के माँसभक्षी के बनने में काम आएगी और दूसरे स्तर में पहुँचते समय 90 प्रतिशत ऊर्जा की हानि होना बहुत ज्यादा मालूम होता है। ऊर्जा का एक स्तर से दूसरे स्तर में स्थानांतरण होना वास्तविक कहानी बताता है मगर ऐसे आँकड़ें एकत्रित करना कठिन है।

-1-Person
10-LARGE Fish
1000-ZOOPLANKTON
10000-PHYTOPLANKTON

आहार शृंखला (Food Chain)

जब प्राकृतिक पारितंत्र में आहार पोषण संबंध अत्यधिक जटिल हो जाते हैं, तो आहार शृंखला सरल एवं रैखिक नहीं रह पाती है, बल्कि अत्यधिक जटिल हो जाती है। इस तरह की आहार शृंखला को आहार जाल कहते हैं। आहार ग्रहण करने और आहार बन जाने की प्रक्रिया में ऊर्जा का प्रवाह एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में होता है। लेकिन पोषण स्तर पांच या छः स्तरों से अधिक नहीं हो सकता क्योंकि ऊर्जा स्थानांतरण बहुत कार्यक्षम नहीं होता। ऊर्जा सतत् प्रवाहित होती रहती है, इसलिए पारिस्थितिकी तंत्र पूरी तरह से सौर ऊर्जा के सतत् निवेश पर निर्भर होता है।

स्थलीय पारितंत्र; जैसे- परिपक्व वन में, वृक्षों एवं पौधों द्वारा उत्पादित जैविक पदार्थ का कुछ हिस्सा शाकाहारी जीव खा लेते हैं, परंतु इस पदार्थ का 90 प्रतिशत तक हिस्सा पत्तियों के रूप में जमीन पर गिर जाता है, जो वियोजकों का भोजन बनता है अर्थात् वह अवशिष्ट आहार शृंखला में समाविष्ट हो जाता है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में अधिकांश ऊर्जा चरण आहार शृंखला के माध्यम से प्रवाहित होता है। जलीय आहार शृंखला में प्रायः पोषण स्तरों की संख्या स्थलीय आहार शृंखला की तुलना में अधिक होती है।

आहार शृंखला की अवधारणा से दो महत्त्वपूर्ण ऊर्जा सिद्धान्त उत्पन्न होते हैं:-

प्रथम:- समस्त जीवन और सभी प्रकार की खाद्य शृंखला का प्रारम्भ सूर्य, प्रकाश और हरे पादपों से होता है।

दूसरा:- खाद्य शृंखला जितनी छोटी होती है, उतनी ही उपयोगी ऊर्जा की क्षति कम होती है अर्थात् मानव या अन्य जीव की एक बड़ी जनसंख्या का पोषण एक बड़ी माँस आधारित खाद्य शृंखला के बजाय, एक छोटी पादप आधारित खाद्य शृंखला द्वारा हो सकता है।

खाद्य शृंखला की अवधारणा यह जानने के लिए बहुत उपयोगी है कि पारिस्थितिकी तंत्र में कौन, किसे खा रहा है या वियोजित कर रहा है, परंतु इससे पारिस्थितिकी तंत्र में घटित हो रही घटनाओं का विशुद्ध चित्र नहीं प्राप्त होता है। अधिकांश जीव समान पोषण स्तर पर ही अलग प्रकार के खाद्य ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त सर्वाहारी-जैसे मानव, चूहे, भालू आदि अन्य अनेक प्रकार के पौधे और जीवों को कई पोषण स्तरों पर खा सकते हैं।

विशेषताएँ	आहार चरण	अवशिष्ट आहार शृंखला	परजीवी या सहायक आहार शृंखला	मृतजीवी आहार शृंखला
ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत	सौर विकिरण	अवशिष्ट पदार्थ	परभक्षी आहार शृंखला के विपरीत यहाँ उपभोक्ता आकार में छोटे होते हैं।	कुछ जीव शीर्ष माँसाहारी जीवों में शामिल होते हैं; जैसे- सिंह, गिद्ध, बाज आदि, जिनका कोई प्राकृतिक खाद्य प्रतियोगी नहीं होता।
प्रथम पोषण	समस्त शाकाहारी	अवशिष्ट भोजी (पोषण स्तर की दृष्टि से एक मिश्रित समूह, जो शाकाहारी, सर्वाहारी एवं प्राथमिक माँसाहारी हो सकता है।)	वृहत् से लघु जीवों की ओर खाद्य ऊर्जा का स्थानांतरण इस आहार शृंखला की लाक्षणिक विशेषता है।	मृत जीवों एवं पादपों के जैविक पदार्थ से खाद्य ऊर्जा का सूक्ष्म-जीवों में स्थानांतरण ही मृतजीवी आहार शृंखला कहलाती है।
आकार	लम्बे आकार की शृंखला	छोटे आकार की शृंखला	----------	----------

आहार शृंखला के प्रकार (Types of Food Chain)

प्रकृति में मुख्य रूप से दो प्रकार की खाद्य शृंखलाएं पायी जाती हैं-

- **चारण खाद्य शृंखला (Grazing food chain):-** वे उपभोक्ता, जो भोजन के रूप में पौधों अथवा पौधों के भागों का उपयोग करके खाद्य शृंखला आरम्भ करते हैं, चारण खाद्य शृंखला निर्मित करते हैं। यह हरे पौधों से प्रारम्भ होती है तथा प्राथमिक उपभोक्ता शाकभक्षी होता है, उदाहरण के लिए-

  घास → टिड्डा → सर्प → बाज अथवा अन्य शिकारी

- **अपरद खाद्य शृंखला (Detritus food Chain):-** यह खाद्य शृंखला क्षय होते प्राणियों एवं पादप शरीर के मृत जैविक पदार्थ से आरम्भ होकर सूक्ष्म जीवों में जाती है और फिर वहाँ से अपरद खाने वाले जीवों में जाती है, जिन्हें अपरदभक्षी अथवा विघटक कहते हैं और फिर वहाँ से अन्य परभक्षियों में पहुँचती है। उदाहरण के लिए-

  कचरा ⟶ स्प्रिंगटेल (कीट) ⟶ छोटी मकड़ियाँ (माँसभक्षी)

इन दो खाद्य शृंखलाओं के बीच का अंतर प्रथम स्तर पर उपभोक्ताओं के लिए ऊर्जा के स्रोत का है। चारण खाद्य शृंखला में ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत सजीव पादप जैवसंहति है, जबकि अपरद आहार शृंखला में ऊर्जा का स्रोत मृत जैविक पदार्थ अर्थात् अपरद हैं।

आहार जाल (Food Web)

एक पारितंत्र में बड़ी संख्या में परस्पर संबंधित शृंखलाएं होती हैं, जो मिलकर खाद्य-जाल बनाती हैं। वस्तुत: खाद्य शृंखला से पारितंत्र में होने वाले खाद्य ऊर्जा प्रवाह का केवल एक ही पहलू प्रस्तुत होता है। इसका अर्थ यह है कि जीवों में एक सीधा, सरल और विशिष्ट संबंध होता है, जो पारितंत्रों में शायद ही कभी होता है।

पारितंत्र के भीतर अनेक परस्पर संबंधित खाद्य शृंखलाएं हो सकती हैं। अधिकांशत: ऐसे पारितंत्र में खाद्य संसाधन एक से अधिक शृंखलाओं का अंश हो सकता है, विशेषकर जब वह संसाधन किसी एक निम्नतर पोषण स्तर पर हो। उदाहरण के लिए, एक ही पादप एक ही समय अनेक शाकभक्षियों का आहार हो सकता है। जैसे:-

खाद्य शृंखला एवं खाद्य जाल में अन्तर (Difference between food chain and food web)

खाद्य शृंखला (Food Chain)	खाद्य जाल (Food Web)
पारितंत्र में एक जीव दूसरे जीवों पर परस्पर भोज्य निर्भरता को प्रदर्शित करता है।	विभिन्न खाद्य शृंखला परस्पर खाद्य पदार्थों का स्थानान्तरण कर खाद्य जाल निर्मित करती हैं।
इसके अन्तर्गत ऊर्जा प्रवाह एक दिशीय होता है।	जबकि खाद्य जाल में ऊर्जा प्रवाह एक दिशीय होते हुए भी विभिन्न पथों से होकर गुजरता है।
इसमें उत्पादक, विभिन्न श्रेणी के उपभोक्ता तथा अपघटक होते हैं।	जबकि इसके अन्तर्गत अनेकों जीव समुदाय के उपभोक्ता तथा अपघटक होते हैं।

पारिस्थितिकीय पिरामिड (Ecological Pyramid)

एक पारितंत्र में हरे पौधे सूर्य से सीधे ऊर्जा ग्रहण करके उसे भोज्य पदार्थ में बदलते हैं। ऐसे पौधे खाद्य पिरामिड के एकदम बुनियादी या प्रथम खाद्य स्तर पर होते हैं और प्राथमिक उपभोक्ता कहलाते हैं।

खाद्य पिरामिड के शीर्ष पर थोड़े से ही माँसाहारी प्राणी होते हैं, जो तृतीय खाद्य स्तर (Third Trophic Level) के होते हैं। जीवित प्राणी ऊर्जा का उपयोग इसी क्रम में करते हैं और पारितंत्र के आधार से लेकर शीर्ष तक ऊर्जा का प्रवाह इसी प्रकार होता है।

उपरोक्त आरेख में पिरामिड के आधार में खाद्य उत्पादक को प्रदर्शित किया गया है तथा शीर्ष पर माँसभक्षी को, जबकि अन्य उपभोक्ता पोषण स्तर को इन दोनों के मध्य दर्शाया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए पारिस्थितिकी पिरामिड को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

संख्या पिरामिड (Pyramid of Numbers)

प्राथमिक उत्पादकों और विभिन्न स्तर के उपभोक्ताओं की संख्याओं के मध्य अंतर्संबंध के आरेखीय निरूपण को संख्या पिरामिड कहते हैं। इसमें पारितंत्र के प्रत्येक पोषण स्तर पर स्थित उन विभिन्न प्रजातियों की कुल संख्या का लेखाचित्र होता है। इसके आधार पर प्राथमिक उत्पादक (संख्या में सर्वाधिक) होते हैं तथा शीर्ष पर माँसभक्षी (संख्या में सबसे कम) उपभोक्ता स्थित होते हैं।

ध्यातव्य है कि कुछ विशिष्ट प्रकार के पारितंत्र में प्राथमिक उपभोक्ताओं की संख्या तथा जीव भार प्राथमिक उत्पादकों की तुलना में अधिक होता है। ऐसे पारितंत्रों में संख्या पिरामिड उलट जाता है, जिसे व्युत्क्रमित या उल्टा पिरामिड कहा जाता है।

साधारण शब्दों में कहा जाए तो उत्तरोत्तर पोषण स्तर के जीवों की संख्या के अनुपात को प्रदर्शित करने वाला पिरामिड जीव संख्या का पिरामिड कहलाता है, ऐसे पिरामिड के आधार पर उत्पादकों की संख्या सर्वाधिक और प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उपभोक्ताओं की संख्या

क्रमशः कम होती जाती है और पिरामिड ऊर्ध्ववर्ती निर्मित होता है, जैसे-घास के मैदान, खेत एवं तालाब के जीव संख्या के पिरामिड।

जैव भार का पिरामिड (Pyramid of Bio-Mass)

एक खाद्य शृंखला के उत्तरोत्तर पोषण में जीवों के संपूर्ण जैव भार के अनुपात को प्रदर्शित करने वाले पिरामिड को जैव भार का पिरामिड कहते हैं। एक स्थलीय पारितंत्र के जैव भार के पिरामिड सदैव सीधे बनते हैं क्योंकि उत्पादकों का जैव भार सबसे अधिक होता है।

ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of Energy)

पारितंत्र में ऊर्जा का पिरामिड हमेशा सीधा ही बनता है क्योंकि उत्पादकों से प्रत्येक उपभोक्ता स्तर पर कुछ मात्रा धीरे-धीरे कम होती जाती है।

किसी पारितंत्र के विभिन्न-पोषण स्तरों की कार्यात्मक भूमिकाओं की तुलना हेतु सर्वाधिक उपयोगी ऊर्जा पिरामिड ही होते हैं। ध्यातव्य है कि ऊर्जा पिरामिड ऊष्मागतिकी के नियमों का पालन करता है। इस पिरामिड के द्वारा प्रत्येक पोषण स्तर पर होने वाले सौर्यिक ऊर्जा के रासायनिक ऊर्जा तथा ऊष्मा ऊर्जा में परिवर्तन को प्रदर्शित किया जाता है।

- तालाब व घास भूमि सीधे जैव संख्या पिरामिड को प्रदर्शित करते हैं जबकि लम्बे वृक्षों से युक्त वन जैव संख्या के उल्टे पिरामिड को प्रदर्शित करते हैं।
- बायोमास पिरामिड के अन्तर्गत जहाँ स्थलीय पारितंत्र सीधे पिरामिड को प्रदर्शित करता है वहीं जलीय (समुद्री) पारितंत्र उल्टे बायोमास पिरामिड को प्रदर्शित करता है।
- ऊर्जा पिरामिड ऊष्मा गतिकी के नियमों का अनुसरण करती है अर्थात इसमें एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में ऊर्जा का स्थानांतरण होता रहता है।
- ऊर्जा प्रवाह सदैव सीधा रहता है। एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में मात्र 10% ही ऊर्जा स्थानांतरित होती है।
- पोषण तत्वों का चक्रण विभिन्न जैविक स्तरों पर इनके परिग्रहण, संग्रहण एवं विमुक्ति की प्रक्रिया को जैव भू-रसायन चक्र कहते हैं।
- विभिन्न जलाशयों; जैसे- समुद्र, नदियां व झील इत्यादि से जलवाष्प के रूप में जल वायुमंडल में पहुँचता है तथा पुनः संघनित होकर वर्षा के रूप में विसरित होता है। इसे ही जल चक्र कहते हैं।
- जल के द्रव में हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन सम्मिलित रूप से समस्त जीवों के सकल भार के लगभग 80.5 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्वि करते हैं।
- जैविक पदार्थों के सकल शुष्क भार (dry weight) का 50% भाग कार्बन का होता है।
- महासागर विश्व स्तर पर कार्बन चक्र के बफर (buffer) के द्रव में कार्य करते हैं।
- जीवित जीवों के समस्त अणुओं के 70 प्रतिशत भाग का निर्माण ऑक्सीजन से ही होता है।
- आकाश में चमकने वाली बिजली नाइट्रोजन को उपयोगी नाइट्रेट में रूपांतरित कर देती है।
- प्रोटीन के विघटन से H_2S पैदा होती है, जिसका प्रयोग सल्फर जीवाणु करते हैं।
- सल्फर का मुख्य स्रोत महासागर होते हैं। सल्फर चक्र उन स्थानों में वायु, जल एवं मृदा के बीच संपर्क स्थापित करता है जहाँ सूक्ष्म जीवाणु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- तापविद्युत संयंत्र और उद्योग बड़ी मात्रा में वायुमंडल के अन्दर सल्फर का उत्सर्जन करते हैं।
- तालाब में पादपप्लवक (Phytoplankton) तथा प्राणीप्लवक (Zooplankton) मिलकर अग्रगामी समुदाय का निर्माण करते हैं।
- अमरबेल का दूसरे पौधे पर उगना परजीविता को प्रदर्शित करता है।
- वायुमंडलीय नाइट्रोजन का ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में अमोनिया में परिवर्तित होना अमोनियाकरण कहलाता है।
- उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं द्वारा श्वसन क्रिया के माध्यम से कार्बन डाईऑक्साइड (Co_2) निकलती है।
- जंगल में लगने वाली आग, ज्वालामुखी विस्फोट, जीवाश्म ईंधनों का दहन आदि।

पारिस्थितिकीय दक्षता (Ecological Efficiency)

पारितंत्र में पारिस्थितिकीय दक्षता का तात्पर्य जीवों द्वारा एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर तक ऊर्जा के स्थानांतरण से है। पारितंत्र की पोषण संरचना में क्रमशः प्रत्येक चरण में पोषण स्तर में ऊर्जा का ह्रास होता है। इस ऊर्जा ह्रास के लिए दो कारक उत्तरदायी माने

गए हैं- प्रथम यह है कि प्रत्येक पोषण स्तर में उपलब्ध ऊर्जा के एक भाग का श्वसन अथवा उपापचय क्रियाओं में नष्ट हो जाना तथा द्वितीय, पोषण रूपांतरण में ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा का ह्रास है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

- पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) शब्दावली का सर्वप्रथम प्रयोग 1935 में ए.जी. टांसले ने किया था।
- किसी क्षेत्र का समस्त जैव एवं अजैव पर्यावरण पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र के रासायनिक संघटक विशिष्ट चक्रों को प्रवाहित करते हैं जिन्हें जैव भू-रासायनिक (Biogeochemical) चक्र कहते हैं।
- पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह एक दिशी तथा अचक्रीय (Non-Cycle) होता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र एक खुला तंत्र होता है, जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का सतत् आवागमन होता रहता है।
- सभी जीव तथा उनका पर्यावरण आपस में क्रियाशील है और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।
- अनुक्रमण (Succession) एक प्राकृतिक परिघटना है जिसमें पुराने पारिस्थितिक तंत्र का स्थान नया एवं पहले से आर्थिक विविधता वाला पारितंत्र लेता है।
- पारिरिस्थतिकी तंत्र के विकास के अनुक्रमों की संक्रमणकालीन अवस्थाओं (Transitional Stages) को सेरे (Sere) कहते हैं। सेरे या सिरे पारितंत्र के श्रृंखलाबद्ध क्रमिक विकास को प्रदर्शित करता है।
- किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य है।
- पारिस्थितिकीय पिरामिड की संकल्पना का प्रतिपादन 1927 ई. में चार्ल्स एल्टन द्वारा प्रस्तुत किया गया था। पारिस्थितिकीय पिरामिड को जीव संख्या, पिरामिड, बायोमास पिरामिड तथा ऊर्जा पिरामिड के रूप में वर्गीकृत किया गया।
- पारिस्थितिकी पिरामिड में प्रत्येक पोषण स्तर पर बायोमास तथा ऊर्जा में क्रमिक कमी होती जाती है।

अध्याय
4

सामुदायिक अन्त:क्रिया
Community Interaction

विभिन्न प्रजातियों की जनसंख्या, जो एक ही क्षेत्र में रहती है तथा एक-दूसरे के साथ परस्पर क्रिया करती है, जैविक समुदाय कहलाती है। वस्तुत: यह विभिन्न जातियों की विविध प्रकार की जनसंख्या का साहचर्य या समाहार है। एक समुदाय में विभिन्न प्रजातियों के कई जीव रहते हैं, जिसकी अलग जाति संरचना होती है। इनकी संरचना प्रजातियों की पारस्परिक क्रिया के कारण एक-दूसरे से पर्यावरणीय संबंध तथा अभिलक्षण के तहत होती है। वस्तुत: पारितंत्र के भीतर पाये जाने वाले पादप तथा जन्तुओं की समष्टियाँ एक-दूसरे से पृथक् स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करतीं। ये सदैव एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं तथा परस्पर मिलकर समुदाय (Community) का निर्माण करती हैं। अत: प्रकृति में एक ही तरह के वातावरण में मिलने वाले विभिन्न जाति के जन्तुओं व वनस्पतियों का समूह एक समुदाय के अंतर्गत आता है।

पर्यावरण के अंतर्गत पौधे, जन्तु व सूक्ष्मजीव अपने अलग-अलग समुदाय (Community) बनाते हैं। सभी समुदायों में सभी प्रजातियां समान रूप से अभिव्यक्त नहीं होतीं। उनमें से कुछ दूसरी प्रजातियों पर प्रभावी (Dominant) होती हैं और सम्पूर्ण समुदाय पर अपना प्रभाव बनाये रखती हैं।

प्रकृति में निहित जैविक समुदायों में पादप, जन्तुओं और सूक्ष्म जीवों के समुदाय, ऊर्जा संसाधन और स्थान के लिए एक-दूसरे से अन्त: क्रियाएं करते रहते हैं। पौधे जन्तुओं को भोजन और ऑक्सीजन प्रदान करते हैं, जिसके बदले में जन्तुओं से उन्हें कार्बन-डाईऑक्साइड प्राप्त होती है। जन्तु, पुष्पों के परागण तथा बीजों के प्रकीर्णन (Dispersal) में सहायक होते हैं। सूक्ष्मजीव, जन्तुओं व पौधों से विभिन्न प्रकार से पारस्परिक क्रियाएँ करते हैं।

इन जैविक समुदायों द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण, मिट्टी की उर्वरता का निम्नीकरण अथवा बढ़ाया जाना तथा कार्बनिक मृत-पदार्थों को विघटित किया जा सकता है। इससे जटिल कार्बनिक अणुओं का सरल अकार्बनिक अणुओं में अपघटन हो जाता है। अपघटित पदार्थ मृदा में पुन: चक्रण के लिए उपलब्ध हो जाते हैं।

ध्यातव्य है कि पर्यावरण में जैविक समुदाय के मध्य अन्त: क्रियाएँ परस्पर आदान-प्रदान संबंधों को व्यक्त करती हैं। ये अंत: क्रियाएं सामान्यत: दो रूपों में होती हैं-

- धनात्मक अंत: क्रियाएँ (Possitive Interactions)
- ऋणात्मक अंत: क्रियाएँ (Negative Interactions)

धनात्मक अन्त:क्रियाएँ (Positive Interactions)

धनात्मक अन्त: क्रिया का तात्पर्य दो पारिस्थितिक समुदायों के मध्य होने वाली आपसी अंत: क्रिया से है जिसमें एक सहयोगी लाभान्वित होता है, परन्तु इस अंत: क्रिया के दौरान किसी को हानि नहीं होती है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रक्रम पाए जाते हैं, जैसे- सहजीविता (Symbiosis), जब दोनों सहयोगी समान रूप से लाभान्वित होते हैं, तब किसी को भी कोई हानि नहीं होती है, तो इसे सहोपकारिता (Mutualism) कहते हैं। यदि एक सहयोगी बिना दूसरे को हानि पहुँचाए ही लाभान्वित होता है, तो इसे सहभोजिता कहते हैं। परन्तु यदि दोनों ही सहयोगी भौतिक संबंध स्थापित किए बिना ही परस्पर लाभान्वित होते हैं, तो इसे आदिसहयोगी (Protocooperation) कहते हैं।

ऋणात्मक अन्त:क्रियाएँ (Negative Interactions)

ऋणात्मक अन्त: क्रिया में एक सहयोगी स्वयं के पोषण के लिए दूसरे को हानि पहुँचाता है।

जैविक समुदाय का संगठन

समुदाय के विशिष्ट पैटर्न को समुदाय की संरचना कहा जाता है और इसका निर्धारण निम्नलिखित उपागमों द्वारा किया जाता है-

- उस क्षेत्र का प्रकार, जिसमें समुदाय की समष्टियाँ पायी जाती हैं।

- समुदाय में प्रजातियों की विविधता के कारण।
- विभिन्न समष्टियों की भूमिका द्वारा।
- उस पर्यावरणीय क्षेत्र में रहने वाले समुदाय की विभिन्न समष्टियों के बीच अन्योन्यक्रिया द्वारा।

समुदाय के सदस्य पर्यावरण के साथ भी सक्रिय रूप से अन्योन्यक्रिया करते हैं। समुदाय में केवल वे पौधे और जन्तु जीवित रहते हैं, जो पर्यावरण के साथ अनुकूलन कर लेते हैं। जलवायु पर्यावरण के प्रकार को निर्धारित करती है। अत: समुदाय के जीवों के प्रकार का निर्धारण भी जलवायु के द्वारा ही होता है। उदाहरण के लिए, यह किसी क्षेत्र की जलवायु ही है, जो इस बात का निर्धारण करती है कि कोई क्षेत्र मरुस्थल होगा या जंगल।

जंतु विविधता (Fauna Diversity)

जंतु-विविधता से तात्पर्य विभिन्न क्षेत्रों में स्थित जंतुओं की प्रजातीय विविधता से है। यह प्रजातीय विविधता अलग-अलग पर्यावरणीय दशाओं के अनुरूप विकसित हुई है। जंतुओं में पर्यावरणीय दशाओं के आधार पर विविधता के कारण शारीरिक बनावट, खाद्य शृंखला, आवास क्षेत्र आदि में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है। इन्हीं विशिष्टताओं के आधार पर विश्व भर में पाए जाने वाले जन्तुओं को वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

- कशेरूकी जंतु (Vertebrates Organism)।
- अकशेरूकी जंतु (Invertebrates Organism)।

कशेरूकी जंतु (Vertebrates Organism)

कशेरूकी (Vertebrate) प्राणिसाम्राज्य के कॉर्डेटा (Chordata) समुदाय का सबसे बड़ा उपसमुदाय है जिसके सदस्यों में रीढ़ की हड्डी विद्यमान रहती है। सामान्य शब्दों में कहें तो जंतुओं की ऐसी प्रजातियाँ, जिनमें रीढ़ की हड्डी उपस्थित होती है, कशेरूकी जन्तु कहलाते हैं। कशेरूकी या रीढ़धारी जन्तु शारीरिक रूप से ज्यादा विकसित और बड़े होते हैं। कशेरूकी जन्तुओं को दो भागों में विभाजित किया जाता है-

- **एग्नेथा:-** वास्तविक जबड़े रहित, चूषक मुख। उदाहरण-लैंप्रि (Lamprey) तथा हैग मछलियाँ आदि।
- **ग्नेथोस्टोमेटा:-** जबड़े युक्त प्राणी। इसके अंतर्गत लगभग संपूर्ण कशेरूकी जन्तु आ जाते हैं।

स्मरणीय है कि कशेरूकीय जन्तुओं में विभिन्न आवासीय क्षेत्र एवं समुदायों में भिन्नता के कारण अधिक विविधता पायी जाती है। रीढ़धारी जन्तुओं का अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:-

उभयचर (Amphibians)

उभयचर वर्ग कशेरूकीय जन्तुओं का एक महत्त्वपूर्ण वर्ग है, जो जीव-वैज्ञानिक वर्गीकरण के अनुसार मत्स्य और सरीसृप वर्गों के बीच की श्रेणी में आता है। उभयचर जन्तु स्थल एवं जल दोनों क्षेत्रों में रह सकते हैं। इस वर्ग के कुछ जन्तु सदा जल में तथा कुछ स्थल पर एवं कुछ जन्तु सदा दोनों में से किसी एक में रहते हैं। इनके शरीर पर शल्क, बाल या पंख नहीं होते हैं, परंतु इनकी त्वचा अधिक ग्रंथिमय होने के कारण चिकनी होती है। ये फेफड़े (Lungs) एवं गलफड़े (Gills) दोनों से श्वसन करने में सक्षम होते हैं। इसी कारण ये स्थलीय एवं जलीय दोनों क्षेत्रों में रहने के लिए अनुकूलित होते हैं।

सरीसृप (Reptiles)

सरीसृप प्राणी-जगत का वह समूह है, जो पृथ्वी पर रेंगकर चलता है। इस वर्ग के जन्तुओं के शरीर पर बाल अथवा पंख अनुपस्थित होते हैं। इनके शरीर पर शल्क (Squama) पाया जाता है। इनमें आंतरिक निषेचन होता है तथा ये असमतापी (Cold Blooded) प्राणी हैं। सरीसृप वर्ग के जीवित सदस्यों में साँप, छिपकली, घड़ियाल, मगरमच्छ, कछुआ तथा टुएट्रा हैं। स्मरणीय है कि विलुप्त जन्तुओं में डायनासोर तथा इक्थियोसौर आदि सरीसृप वर्ग के अंतर्गत ही आते हैं। सरीसृप सामान्यत: अण्डे देने वाली प्रजाति है।

स्तनधारी (Mammals)

स्तनधारी जन्तु पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी जंतुओं से अधिक जटिल मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र वाले जीव हैं। इस वर्ग के जंतु रचना, क्रियाशीलता एवं बुद्धि में अधिकतम विकसित होते हैं। इनकी त्वचा पर बालों या रोयें का आवरण पाया जाता है। स्तनधारियों के मैमरी ग्लैण्ड्स अधिक विकसित होने के कारण ये प्रजनन के बाद अपने शिशुओं को दूध पिलाने में सक्षम होते हैं। स्तनधारी की जीवन अवधि लम्बी होती है। स्तनधारियों में सुरक्षा के लिए प्राय: सिर पर सींग, अंगुलियों पर नाखून, पंजे या बाह्य मांसल कान भी पाये जाते हैं।

इनकी त्वचा मोटी व जलरोधी (वाटर प्रूफ) होती है। इनकी त्वचा में स्वेद ग्रंथियाँ पाई जाती हैं जो पसीने का स्रावण करके ताप नियंत्रण में सहायता करती हैं। इनकी त्वचा में तेल ग्रंथियाँ भी पाई जाती हैं जिनसे स्रावित तेल बालों को चिकना एवं जलरोधक बनाता है। जंतुओं की मुख गुहा में दांत पाए जाते हैं। इनकी देहगुहा पेशीयुक्त डायाफ्राम द्वारा वक्षगुहा एवं उदर गुहा में बँटी होती है।

स्तनधारी जंतु समतापी (Warm blooded) होते हैं। इनके फेफड़े अधिक विकसित होते हैं, जो लम्बे जीवन काल में श्वसन के लिए अत्यधिक सहायक होते हैं। गिलहरी, चमगादड़, व्हेल, समुद्री गाय, पैंगोलिन इत्यादि स्तनधारियों की श्रेणी में आते हैं।

पक्षी वर्ग (Aves)

पक्षी वर्ग के अंतर्गत ऐसे जंतु शामिल किए जाते हैं, जिनका शरीर पिच्छों (पर) से ढँका रहता है। इनका शरीर स्ट्रीम लाइंड होता है। इनमें एक जोड़ी पाद (पैर) पाए जाते हैं। अग्रपाद पंखों में रूपांतरित हो जाते हैं तथा पश्च पादों में नखयुक्त अंगुलियाँ होती हैं। पक्षियों के पंख पूर्ण विकसित अवस्था में होते हैं। फलतः वे उड़ने में सक्षम होते हैं। ये समतापी अर्थात् वार्म ब्लडेड होते हैं। इनकी त्वचा शुष्क होती है और ये अण्डे देते हैं। इस वर्ग के प्राणियों का अंतः कंकाल पूर्णतया अस्थिल होता है और उनमें वायु भरी होती है जिसके कारण इन्हें उड़ने में सहायता मिलती है।

पक्षी वर्ग के प्रमुख जन्तु आर्कियोप्टेरिक्स (सरीसृप तथा पक्षी वर्ग के बीच की संयोजक कड़ी), कबूतर (Pigeon), मोर (Peacock), मुर्गा (Cock), कौआ, तोता, कीवी, पेंगुइन तथा ऑस्ट्रिच आदि हैं।

पक्षी (Aves)	जगत (Kingdom)	संघ (Phylum)	उपसंघ (Order)	वंश (Genus)	जाति (Species)
कबूतर	एनिमेलिया (Animalia)	कॉर्डेटा (Chordata)	वर्टीब्रेटा	कोलम्बा	लिविया
गौरेया	एनिमेलिया (Animalia)	कॉर्डेटा (Chordata)	वर्टीब्रेटा	पैसर	डोमेस्टिकस् (Domesticus)
मोर	एनिमेलिया (Animalia)	कॉर्डेटा (Chordata)	वर्टीब्रेटा	पावो	म्यूटिकस (Muticus)
तोता	एनिमेलिया (Animalia)	कॉर्डेटा (Chordata)	सिटैसिफॉर्मिस (Psittaciformes)	77	328 प्रजातियाँ
पेंगुइन	एनिमेलिया (Animalia)	कॉर्डेटा (Chordata)	इंपिनेस (Impennes)	स्फेन्सिकस हम्बोल्टी (Spheniscus Humboldti)	18

मत्स्य (Fishes)

मछलियाँ असमतापी अथवा अनियततापी (Cold Blooded) होती हैं। इनके शरीर पर शल्क (Squama) तथा दो पंख पाए जाते हैं। मछलियाँ खारे जल एवं स्वच्छ जल में पाई जाती हैं। श्वास लेने के लिए इनमें फेफड़ों की बजाय विकसित गिल्स (Gills) होते हैं। अधिकांश मछलियाँ अंडज होती हैं।

अकशेरूकी जंतु (Invertebrate Organism)

अकशेरूकी जंतु रीढ़विहीन (Spinal Cordless) होते हैं। रीढ़विहीन अकशेरूकी जंतुओं की अधिकांश प्रजातियों में अस्थि कंकाल का अभाव पाया जाता है। पृथ्वी पर पायी जाने वाली जन्तुओं की समस्त प्रजातियों में इनकी संख्या सर्वाधिक है। अधिकांश जलीय जंतु अकशेरूकी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। जलीय जंतुओं में सूक्ष्म जंतु से लेकर बड़े आकार के जंतु शामिल किए जाते हैं। अकशेरूकी जन्तुओं को विभिन्न प्रजातियों में वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार हैं:-

मोलस्क (Mollusca)

'मोलस्क' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अरस्तु ने किया था; परंतु संघ का नामकरण जॉस्टन (Johnston) नामक जीव विज्ञानी ने 1960

ई. में किया था। इस वर्ग के जन्तुओं का शरीर कोमल होने के कारण इन्हें मोलस्क कहा जाता है। सामान्यत: इनका कोमल शरीर एक कवच (Shell) से ढँका होता है। इस वर्ग के जन्तुओं की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- इनके अधिकांश सदस्य समुद्री (Marine) होते हैं, लेकिन कुछ स्वच्छ जल में एवं स्थल पर भी पाए जाते हैं।
- मोलस्क में श्वसन क्रिया गिल्स (Gills) द्वारा होती है।
- इनका हृदय पृष्ठ भाग में हृदयावरण के अन्दर होता है।
- इनके तंत्रिका तंत्र में तीन जोड़ी गुच्छिकाएँ होती हैं। ये गुच्छिकाएँ तंत्रिकाओं और योजनिकाओं द्वारा जुड़ी रहती हैं।
- सामान्यत: ये एक लिंगी होते हैं, परन्तु कुछ जन्तु द्विलिंगी भी होते हैं।

मोलस्क के उदाहरण:-

- हेलिक्स (Helix), लाइमैक्स (Limax), काइटन (Chiton), सीप (Unio), सीपिया (Sepia), घोंघा (Pila), ऑक्टोपस (Octopus), नियोपाइला (Neopilina) आदि।

ऐनेलिडा (Annelida)

'ऐनेलिडा' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लैमार्क ने किया था। इस संघ के अंतर्गत खण्डयुक्त जन्तु रखे गए हैं। इस संघ में आने वाले जन्तुओं का शरीर खण्डित, लम्बा एवं कृमि के आकार का होता है। प्रत्येक खण्ड वलय (Ring) जैसा होने के कारण इन्हें ऐनेलिडा कहा जाता है।

- इनका शरीर दो भागों में विभाजित होता है।
- इस संघ के जन्तुओं में अंग एवं अंगतंत्र का पूर्ण विकास पाया जाता है।
- इनमें हीमोग्लोबिन रुधिर कणिकाओं में न होकर प्लाज्मा में घुला रहता है।
- ऐनेलिडा संघ के जंतुओं द्वारा श्वसन (Respiration) साधारणत: त्वचा (Skin) से किया जाता है।

ऐनेलिडा के उदाहरण:-

- केंचुआ, जोंक, नेरीस, एफ्रोडाइट (Aphrodite) आदि।

नेमेटोड्स (Nematodes)

नेमेटोड्स वर्ग के जीवों का शरीर लचीला एवं सूत/धागे की तरह होता है। इनकी शारीरिक संरचना इन्हें विषम मौसमी परिस्थितियों (सूखा अथवा शीत) में जीवित रहने के लिए सक्षम बनाती है। इनके शरीर की ऊपरी त्वचा को एपीडर्मिस कहते हैं।

नेमेटोड्स के उदाहरण:-

- गोल कृमि (Roundworm), पिन कृमि (Pinworm) तथा फीता कृमि (Tapeworm) आदि।

आर्थ्रोपोड्स (Arthropods)

अकशेरुकी जन्तुओं के अंतर्गत आर्थ्रोपोड्स प्रजातियों की संख्या पृथ्वी पर सबसे अधिक है। 'आर्थ्रोपोडा' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वान सीबोल्ड ने किया था। इस संघ में लगभग 10 लाख जन्तु हैं, जो पर्वत की ऊँचाईयों से लेकर समुद्र में 8 km की गहराई तक पाये जाते हैं। इनमें कीटों की प्रजाति सर्वाधिक है। आर्थ्रोपोडा संघ की प्रजातियों के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं-

- ये विश्व के किसी भी आवास के अनुरूप अपने-आप को ढालने में सक्षम होते हैं।
- इनमें निषेचन बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के होते हैं।
- इनमें तंत्रिका पूर्णरूप से विकसित होती है।
- इनमें खुला रुधिर तंत्र (Open blood Vascular System) भी पाया जाता है।
- इस संघ के जन्तु जल, थल एवं वायु तीनों जगहों पर पाए जाते हैं।
- इनमें श्वसन क्रिया शरीर की सतह द्वारा, जलीय जीवों में क्लोमों (Gills) द्वारा और स्थलचर प्राणियों में श्वास नलियों द्वारा होती है।

आर्थ्रोपोड्स के उदाहरण:-

- मकड़ी (Spiders), बिच्छू (Scorpion), झींगा (Palaemon), ट्राइआर्थ्रस (Triarthrus), लिम्यूलस (Limulus), निम्फॉन (Nymphon), क्रेफिश पिक्नोगोनम (Pycnogonum) आदि।

आर्थ्रोपोड्स अथवा आर्थ्रोपोडा संघ के जन्तुओं को उनके विशिष्ट लक्षणों तथा विशेषताओं के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया गया है-

क्रस्टेशियन (Crustaceans)

क्रस्टेशियन प्रजाति के जन्तुओं का शरीर एक कठोर खोल (कवच) से ढँका होता है तथा इनमें कई जोड़े पैर पाये जाते हैं। इस कुल के जन्तु प्राय: जल में रहते हैं। केकड़ा, चिरांत, लॉब्स्टर (झींगा) आदि इसी कुल के आर्थ्रोपोड्स हैं।

एरेक्निड्स (Arachnids)

एरेक्निड्स को सामान्यत: अष्टपाद जन्तु कहा जाता है क्योंकि इस वर्ग के सभी प्राणियों के शरीर में आठ पैर होते हैं। लगभग सभी एरेक्निड्स स्थलवासी होते हैं। मकड़ी, बिच्छू, टिक्स आदि एरेक्निड्स वर्ग के अंतर्गत आते हैं।

मिरियापोड्स (Myriapods)

आर्थ्रोपोडा संघ का यह सबसे प्रमुख उपसंघ है। मिरियापोड्स का अर्थ 'बहुत से पैर' होता है। इस उपसंघ के अंतर्गत एक विशाल जीवीय समूह आता है। इनके शरीर पर बहुत सी धारियाँ (लाइन) तथा कई जोड़े पैर पाये जाते हैं। ये सभी स्थलीय आर्थ्रोपोडा हैं। गोजर (कनखजूरा), लिली आदि इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं।

इनसेक्ट्स (Insects)

इनसेक्ट्स या कीट आर्थ्रोपोडा संघ के सूक्ष्म जीवों का उपसंघ हैं। इसके अंतर्गत लगभग 3 करोड़ जीवों की पहचान की गयी है। इस उपसंघ के अंतर्गत चींटी, कीट-पतंगे आदि आते हैं।

अध्याय
5

जैव-विविधता
Bio-Diversity

जैव-विविधता क्या है?

वैज्ञानिक शब्दों में जैव-विविधता जीन्स (Genes), जातियों (Species) और पारिस्थितिक तंत्रों (Ecosystems) की समग्रता है। सामान्य शब्दों में, जैव-विविधता से आशय किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में पायी जाने वाली भिन्न-भिन्न प्रजातियों के जंतुओं तथा पौधों की संख्या और उनकी विविधता से है। जैव-विविधता के अंतर्गत न सिर्फ एक प्रजाति के अंतर्गत पायी जाने वाली विविधताएँ सम्मिलित की जाती हैं, अपितु विभिन्न प्रजातियों के मध्य अंतर और पारिस्थितिकीय तंत्रों के मध्य तुलनात्मक विविधता भी शामिल की जाती है।

वस्तुत: जैव-विविधता को अंग्रेजी में 'Biodiversity' कहते हैं जो कि 'Biological Diversity' का ही संक्षिप्त स्वरूप है। जैव-विविधता (Biodiversity) दो शब्दों 'Bios' तथा Diversity से मिलकर बना है, यहाँ Bios का अर्थ 'जीवन' तथा Diversity का अर्थ 'विविधता' है। जैव-विविधता (Biodiversity) शब्दावली का प्रचलन लगभग 1980 ई. से माना जाता है। 'जैव-विविधता' शब्द का सर्वप्रथम उपयोग थॉमस लवजॉय (Thomas Lovejoy) द्वारा 1980 में किया गया था। लवजॉय ने अपने लेख में बताया कि जैव-विविधता का संबंध पृथ्वी पर पाई गई पौधों एवं पशुओं की प्रजातियों से है। पर्यावरणविदों का मानना है कि पृथ्वी पर जीवन आज से लगभग 3.8 बिलियन वर्ष पूर्व शुरू हुआ था और वर्तमान में पृथ्वी के विभिन्न भागों पर अनेक प्रकार के पौधों एवं पशुओं का विकास पाया जाता है।

परिभाषा:-

जैव-विविधता से संबंधित विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समूहों तथा विद्वानों ने अपनी परिभाषाएं दी हैं जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

वर्ष 1992 में संपन्न जैव-विविधता पर आधारित कन्वेंशन (Convention on Biological Diversity) के अनुच्छेद-2 के अनुसार "जैव-विविधता के अंतर्गत पार्थिव, समुद्री एवं अन्य जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों (Ecological System) तथा पारिस्थितिकी संकुलों में रहने वाले जीवों, विभिन्न प्रजातियों के जीवों तथा पारिस्थितिकी तंत्रों की विविधता सम्मिलित है।

जॉन्स और स्टॉक्स इटाल के अनुसार "प्राकृतिक विविधता जैविक विविधता का पर्यायवाची है। एक वैज्ञानिक के लिए प्राकृतिक विविधता के कई अर्थ हैं। इनमें निम्नलिखित तत्व सम्मिलित हैं- एक आवास स्थल अथवा भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न मौलिक प्रजातियाँ एक क्षेत्र विशेष में विभिन्न प्रजातियों के बीच अंत:क्रिया करती हैं तथा एक प्रजाति के विभिन्न जीवों के जैविक विविधता जैसे तत्त्वों को समेटे हुए होती हैं।

जैव-विविधता के तीन तत्त्व हैं-

- **संपूर्ण जीन्स (Total Genes):-** इसे आनुवांशिक विविधता (Genetic Diversity) भी कहते हैं। यह जाति के अंदर हुए जीन्स परिवर्तनों को व्यक्त करती है। इसके अंतर्गत एक ही प्रजाति की विभिन्न समष्टियों (जैसे- भारत में परंपरागत चावल की हजारों किस्मों और समष्टियों) के भीतर ही आनुवांशिक परिवर्तन शामिल होते हैं।
- **संपूर्ण जातियाँ या प्रजातीय विविधता (Species Diversity):-** यह किसी क्षेत्र में जातियों की किस्मों को व्यक्त करती है। उदाहरणार्थ, किसी द्वीप में 115 जातियाँ हैं, जिसमें पक्षियों की 10 जातियाँ, मृगों की 100 जातियाँ, छिपकली की 5 जातियाँ आदि संख्यात्मक अभिव्यक्ति के अतिरिक्त इन्हें गुणवत्ता के आधार पर भी प्रदर्शित किया जाता है। द्वीप 'अ' में द्वीप 'ब' की अपेक्षा अधिक वर्गीकृत विविधता (Greater Taxonomic Diversity) पायी जाती है।
- **पारिस्थितिक तंत्र विविधता (Ecosystems Diversity):-** इसका तात्पर्य जातियों अथवा समुदायों की जेनेटिक विविधता से है। यह विभिन्न पर्यावरणीय दशाओं में प्रजातियों के समुदायों की सामूहिक प्रतिक्रिया की द्योतक है। जीवों के समूह एवं उनके अजैविक पर्यावरण तथा उनकी अंत:क्रिया मिलकर कार्यात्मक, गतिशील एवं जटिल इकाईयों का निर्माण करते हैं, जिन्हें

पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। प्रजातियों एवं उनकी भौतिक दशाओं के विविध संयोजक तथा उनकी विविध अंत:क्रिया के द्वारा विविध प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों की रचना होती है। उदाहरण के लिए, एक प्रवाल तंत्र और एक उष्णकटिबंधीय वन के पारिस्थितिक तंत्रों में भारी अंतर होता है।

ऐसा माना जाता है कि प्रजातीय विविधता एवं पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता एवं अस्थिरता का प्रतिरोध करने की क्षमता के मध्य एक सकारात्मक संबंध होता है। एक ऐसे पारिस्थितिक तंत्र, जिसमें प्रजातियों की संख्या एवं उनके मध्य अंत:क्रिया की दृष्टि से समृद्ध विविधता हो, तो उसके बड़े खाद्य जाल में से किसी एक प्रजाति का विलोपन पारिस्थितिक संतुलन को प्रभावित नहीं करेगा, परंतु इसके विपरीत किसी साधारण पारिस्थितिक तंत्र के लघु आहार जाल में से एक प्रजाति के विलोपन के अत्यंत घातक परिणाम हो सकते हैं और उस पारिस्थितिक तंत्र का संतुलन भी बिगड़ सकता है। यद्यपि उपर्युक्त तीनों स्तर समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। परंतु, सर्वाधिक ध्यान प्रजातीय विविधता पर ही केंद्रित रहता है जो कि, एक प्रजाति जीवों का समूह होता है। जो जनन करके अपने जैसे नये सदस्यों की संख्या बढ़ाते हैं।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि एक प्रजाति दूसरी प्रजाति के साथ जनन नहीं करती। प्रजातियों का मापन सीधे गणना द्वारा या उनकी संख्या के अनुमान द्वारा किया जाता है।

जैव-विविधता के स्तर (Stratification of Bio-Diversity)

पृथ्वी पर जीवों, वनस्पतियों आदि में विविधता प्रकृति की अनुपम अनुकृति है। इसका बाह्य स्वरूप एक विशिष्ट इकाई में है, जबकि आंतरिक स्वरूप अनेक स्तरों में विभाजित है। सभी स्तर एक जटिल तंत्र के रूप में आबद्ध हैं। ध्यातव्य है कि हमारे चारों ओर विभिन्न प्रकार के जीव रहते हैं जो आकार, जनन, व्यवहार आदि की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, विश्व में 20,000 से अधिक चींटियों की प्रजातियाँ, 22000 से अधिक ऑर्चिड (Orchid) तथा लगभग 30000 से अधिक मछलियों की प्रजातियाँ पायी जाती हैं। जैविक व्यवस्था के अलग-अलग स्तरों पर जीवों की भिन्न-भिन्न प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जीवों में पाई जाने वाली इसी परिवर्तनशीलता को जैव-विविधता कहा जाता है। जैव विविधता केवल प्रजातियों के स्तर पर ही नहीं, अपितु जैव व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर पायी जाती है। जैव-विविधता को निम्नांकित तीन महत्त्वपूर्ण स्तरों में विभाजित किया जाता है-

- आनुवांशिक विविधता (Genetic Diversity)
- प्रजातीय विविधता (Species Diversity)
- पारितंत्रीय विविधता (Ecosystem Diversity)

आनुवांशिक विविधता (Genetic Diversity)

एक ही प्रजाति के विभिन्न जीवों में जीनों के क्रम की भिन्नता के कारण जो विविधता उत्पन्न होती है, उसे आनुवांशिक जैव विविधता कहते हैं। आनुवांशिक विविधता किसी प्रजाति के प्रत्येक सदस्य में विशिष्ट लक्षण एवं विशेषताओं का समावेश करती है। मानव आनुवांशिक रूप से होमोसेपियन्स प्रजाति से संबंधित है तथा इनमें कद, रंग और शारीरिक रूप आदि लक्षणों में काफी भिन्नता पायी जाती है। इसका कारण आनुवांशिक विविधता ही है।

वन्य प्रजातियों की यह विविधता ही वह जीन कोष (Gene Pool) है, जिसमें हजारों वर्षों से फसलों और पालतू पशुओं का विकास हुआ है। यह विविधता केन्द्र में निहित जीनों, क्रोमोसोम विपथनों एवं द्रव्यजीनों (Plasmagenes) के कारण उत्पन्न होती है। जीव समूहों और पारिस्थितिकी घटकों में जब परिवर्तन होने लगता है, तब यह विविधता एक ऐसी क्षमता उत्पन्न करती है, जिससे जैव-विविधता पुन: अपना मौलिक रूप धारण कर लेती है। कभी-कभी एक समूह के अनेक महत्त्वपूर्ण जीन प्राकृतिक घटनाओं अथवा अन्य कारणों से नष्ट हो जाते हैं। ऐसी दशा में जीन अपने समूह को पुनर्जीवित कर देते हैं। दूसरे शब्दों में कहें, तो आनुवांशिक विविधता विशिष्ट जीव या संपूर्ण प्रजाति को बदलते पर्यावरण से अनुकूलन में सहायता करती है और पर्यावरणीय कारकों में दबाव की स्थिति में संपूर्ण प्रजाति के विलुप्त होने के खतरे को कम करती है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जब जीवों के मध्य अंतर प्रजनन होता है तो संतान के नए जीन बन जाते हैं और प्रजाति का नया लक्षण पैदा हो जाता है। आनुवांशिक विविधता के कुछ विशिष्ट उदाहरणों को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं।

- होमोसेपियन्स को मानव जाति का पूर्वज माना जाता है। होमोसेपियन्स की कई प्रजातियाँ हैं, जैसे- कॉकेसाइड, मंगोलॉइड तथा नीग्रोइड। ये प्रजातियाँ अपनी शारीरिक रचना, रंग, नाक, होंठ, कान तथा व्यवहार की दृष्टि से एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं। मानव प्रजातियों में विविधता आनुवांशिक विविधता का ही उदाहरण है।

- विश्व में लगभग 40000 चावल की किस्में खोजी गई। अकेले भारत में लगभग 5000 से अधिक चावल की किस्में अब तक खोजी जा चुकी हैं। ये चावल की किस्में ओरिजा सतिवा (Oryza Sativa) नामक एक ही प्रजाति से संबंधित हैं, परन्तु सुगंध स्वाद, रंग, आकार, कीट प्रतिरोधकता की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न हैं।

प्रजातीय विविधता (Species Diversity)

प्रजातीय विविधता से तात्पर्य एक विशेष पारिस्थितिक तंत्र में प्रजातियों की संख्या अथवा समूहों से है, जिसमें अलग-अलग प्रजाति के जीवों में आनुवांशिक अनुक्रम में स्पष्ट रूप से भिन्नता होती है और उनके बीच प्रजनन क्रिया नहीं होती है। यद्यपि निकट से संबंधित प्रजातियों के आनुवांशिक गुणों में बहुत अधिक समानता होती है। प्रजातीय विविधता को दो रूपों में मापा जा सकता है-

- **प्रजातीय समृद्धि (Species richness):-** यह एक निश्चित क्षेत्र में विभिन्न प्रजातियों की संख्या को दर्शाती है। यहाँ यह स्मरणीय है कि विभिन्न प्रकार की प्रजातियों की उपस्थिति से उनके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों में वृद्धि होती है, जैसे- व्यावसायिक लाभ के उद्देश्य से इमारती लकड़ी प्राप्त करने के लिए लगाए गए वन से हमें सिर्फ लकड़ियाँ प्राप्त हो सकती हैं, जबकि विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे एवं प्राणियों से समृद्ध वनों से फल, चारा, गोंद व रेजिन तथा औषधियाँ आदि प्राप्त कर सकते हैं।
- **प्रजातीय समानता (Species Evenness):-** प्रजातीय समानता से तात्पर्य किसी क्षेत्र में प्रजातियों की सापेक्षिक प्रचुरता अथवा विविधता से है।

प्रजाति (Species) क्या है?

जैवविविधता के अंतर्गत प्रजाति सबसे छोटा प्राकृतिक समूह है। प्रजातियाँ आपस में शारीरिक बनावट तथा आकार व व्यवहार के आधार पर प्राय: समान होती हैं। ये प्रजातियाँ आपस में प्रजनन करने हेतु अनुकूलित होती हैं।

पारितंत्रीय विविधता (Ecosystem Diversity)

पारितंत्रीय विविधता का आशय एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में निहित जैविक-विविधता से है। विश्व में विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र हैं, जिनमें वन, घास के मैदान, मरुस्थल, पर्वत, नदी, झीलें, समुद्र आदि प्रमुख हैं। हालांकि, पारितंत्रीय विविधता का मापन अथवा परिसीमन करना अत्यन्त जटिल है क्योंकि समुदायों में (प्रजातियों का समूह) पारितंत्र की सीमाओं को कठोरतापूर्वक निर्धारित नहीं किया गया है। पारितंत्रों में विभिन्न बदलावों के परिणामस्वरूप, प्रजातियों के मध्य अस्तित्व का संघर्ष उपस्थित होने लगता है। ऐसे में जो सर्वाधिक श्रेष्ठ तरीके से स्वयं को अनुकूलित कर लेती है, केवल वही प्रजाति बचती है।

जैव-विविधता का मापन (Measurment of Bio-Diversity)

प्रजातीय संपन्नता का प्रजातीय विविधता के मापन के लिए सर्वाधिक प्रयोग होता है। सामान्य शब्दों में देखें, तो यह किसी क्षेत्र में प्रजातियों की कुल संख्या की माप है। प्रजातीय संपन्नता (Species Richness) को तीन वर्गों में विभाजित करते हैं-

- **अल्फा सम्पन्नता (α-Richness):-** इसका तात्पर्य एक विशेष क्षेत्र, समुदाय या पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत जीवों के ऐसे समूह से है, जो एक ही पर्यावरण के अंतर्गत निवास करते हैं या एक समान स्रोतों के लिए पारस्परिक क्रिया अथवा प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। इसका मापन पारिस्थितिकी तंत्र में मौजूद प्रजातियों की संख्या से किया जाता है। इसे स्थानिक विविधता भी कहते हैं।
- **बीटा सम्पन्नता (β-Richness):-** यह विभिन्न प्रजातियों, आवासों के बीच प्रजातियों के संगठन में परिवर्तन की दर का द्योतक है। इसके अंतर्गत पारिस्थितिक तंत्र के भीतर या तंत्रों के बीच, जैव-विविधता में होने वाले परिवर्तनों का वर्णन बीटा-संपन्नता कहलाता है। स्मरणीय है कि बीटा-संपन्नता का मापन समय के विभिन्न बिन्दुओं पर दो अलग-अलग आवासों के बीच या एक ही समुदाय के भीतर प्रजातिगत समृद्धि में अंतर इंगित करता है। इसके अंतर्गत उन प्रजातियों की संख्या की तुलना की जाती है जो प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में विशिष्ट रूप से पाई जाती हैं।
- **गामा सम्पन्नता (γ-Richness):-** यह किसी विस्तृत भू-दृश्य प्रवणता के बीच प्रजातियों में परिवर्तन की दर को दर्शाती है और यह किसी क्षेत्र में विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों की सकल विविधता का मापन करती है। इन तंत्रों में पौधे एवं पशु प्राकृतिक सीमाओं से निर्धारित होते हैं। फलत: इसका संबंध समस्त भू-भाग अथवा भौगोलिक क्षेत्र के निवास की विविधता से है। पर्वतों, नदियों, झीलों, सागरों, महासागरों आदि की विविधता गामा विविधता के अंतर्गत ही आती है।

जैव-विविधता का स्वरूप

सामान्यत: ऐसा माना जाता है कि जैव-विविधता का जो वर्तमान स्वरूप हमें दिखाई पड़ता है, वह 2.5 से 3.5 अरब वर्षों में विकसित हुआ है। वैश्विक स्तर पर प्रजातियों की संख्या 2 मिलियन से 100 मिलियन के बीच भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग है। इनमें से 10 मिलियन प्रजातियों की पहचान की जा चुकी है। जैव-विविधता पृथ्वी पर समान रूप से प्राप्त नहीं होती है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र अपनी विशिष्ट पर्यावरणीय दशाओं के कारण जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं तथा ध्रुवों की ओर जाने पर इसका ह्रास होता जाता है।

अक्षांशीय प्रवणता के आधार पर जैव-विविधता

प्राय: यह देखा जाता है कि जैसे-जैसे हम विषुवत् रेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं, तो जैव विविधता में ह्रास होता दिखाई देता है। विषुवत् रेखा (0 डिग्री) से 23½ डिग्री उत्तरी अक्षांश तथा 23½ डिग्री दक्षिणी अक्षांश के मध्य जैव विविधता की सघनता अधिक है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में स्थित अमेजन बेसिन, इक्वाडोर तथा कांगो बेसिन जैसे वनों में, उसके समान क्षेत्रफल वाले संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य-पश्चिम के शीतोष्ण क्षेत्र की तुलना में 10 गुना अधिक संवहनीय (Vascular) पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

जैव-विविधता का महत्त्व (Importance of Bio-Diversity)

जैव-विविधता पर्यावरण तथा मानव दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण है। जैव-विविधता ने मानव संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसके बदले मानव समुदाय ने भी आनुवांशिक, प्रजातीय व पारितंत्रीय स्तरों पर प्राकृतिक विविधता को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त जैव-विविधता हमारे लिए खाद्य पदार्थों, औषधियों, सौन्दर्यात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। जैव-विविधता के महत्त्व को हम निम्नांकित रूप में वर्गीकृत करके देख सकते हैं-

- **चिकित्सा क्षेत्र एवं जैव-विविधता:**- वर्तमान वैज्ञानिक एवं उच्च तकनीकी युग में अधिकांश वस्तुएँ प्रयोगशालाओं में संश्लेषित की जा रही हैं, आधुनिक औषधियों का अधिकांश भाग जो रोगियों को दिया जा रहा है, वह जैविक उत्पत्ति की ही देन है। असंख्य जीवन रक्षक औषधियाँ, पुष्पित पौधों से वियुक्त की जाती हैं।

कुनैन, सिनकोना वृक्ष की छाल से प्राप्त करके मलेरिया के इलाज में प्रयुक्त किया जाता है। फॉक्सग्लव पौधे से डिजिटेलिस नामक मेडिसिन हृदय रोग की चिकित्सा के उपयोग में लायी जाती है। मॉरफीन और कोकीन क्रमश: पोस्ते और कोको की झाड़ियों से प्राप्त की जाती हैं, जो श्वेतरक्तता और कैंसर जैसे गंभीर रोग के साथ-साथ अनेक प्रकार के हृदय रोगों की चिकित्सा के लिए उपयोग में लाई जाती हैं। टेक्सॉल (Taxol) अति आधुनिक खोज है। यह एक प्रकार का रसायन है, जो इयू (Yew) नामक वृक्ष की छाल से प्राप्त किया जाता है। टेक्सॉल अण्डाशीय कैंसर की चिकित्सा में बहुत कारगर है।

पौधों के अतिरिक्त सूक्ष्म जीव भी औषधियों के उत्पादन में बहुत उपयोगी हैं। तीन हजार से अधिक प्रतिजैविक (Antibiotics) सूक्ष्मजीवों से प्राप्त की गई हैं। पेनिसिलीन तथा टेट्रासाईक्लीन नामक महत्त्वपूर्ण प्रतिजैविकों से हम सब परिचित ही हैं। सूक्ष्म जीवों का ही एक उत्पाद साइक्लोस्पोरिन मृदा कवक से निकाला गया है, जो हृदय और गुर्दा प्रतिरोपण शल्य चिकित्सा में असंक्रामक प्रतिक्रिया (Immune Reaction) की रोकथाम के गुणों द्वारा काफी महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है।

- **कृषि के क्षेत्र में:**- जैव-विविधता का महत्त्व विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में स्पष्ट होता है। शताब्दियों से मानव ने उत्पादन को स्थायित्व प्रदान करने और उसे बढ़ाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलें और पशुधन कृत्रिम रूप से पैदा करने का प्रयास किया है। इन परंपरागत प्रक्रियाओं के कारण विभिन्न प्रकार के आनुवांशिक रूप से विकृत पौधों की फसलें पैदा की गई हैं, जो अब परित्यक्त की जा रही हैं और उनके स्थान पर नई उच्च उत्पादक फसलें पैदा की जा रही हैं। हालांकि, ये नई उच्च उत्पादी फसलें आनुवांशिक रूप से सजातीय हैं और उनका आनुवांशिक आधार सीमित है। ये कीटनाशकों और विभिन्न रोगों के विरुद्ध अत्यंत असुरक्षित हैं। उदाहरणार्थ, जो विवृत चावल मुख्य रूप से एशिया में पैदा होता है, जो वायरस के कारण तबाह हो गया, किंतु एक भारतीय जंगली विवृत ऐसी भी है, जिसमें प्रतिरोध की आनुवांशिक विशेषता पायी जाती है। गहन प्रजनन के द्वारा एक प्रतिरोधी संकर चावल उत्पन्न कर लिया गया, जो अब बड़े पैमाने पर पैदा किया जाता है। ये उदाहरण उच्च कृषीय पैदावार के लिए आनुवांशिक विविधता या जीनपूल्स के महत्त्व को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं।
- **जैव-विविधता एवं खाद्य आपूर्ति:**- जैव-विविधता हमारी खाद्य आपूर्ति का अनिवार्य घटक है। हाल के शोधों से यह पता चला है कि 4 लाख ज्ञात पादप प्रजातियों में से 80 हजार खाने योग्य हैं और वर्तमान समय में केवल 150 का ही उपयोग किया जा रहा है। वैश्विक खाद्य संसाधन के 90 प्रतिशत भाग की आपूर्ति मात्र 15 प्रजातियों द्वारा होती है और उनमें से तीन-गेहूँ, चावल और आलू 25 प्रतिशत से अधिक खाद्य आपूर्ति करते हैं।

- **जैव-विविधता और प्राकृतिक उत्पाद:-** मानव सभ्यता के आरम्भ से ही जैविक संसाधनों का उपयोग विभिन्न आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति के लिए किया जाता है। अनेक पौधे एवं प्राणी ऐसे उत्पाद उत्पन्न करते हैं, जो अपनी विशिष्ट भौतिक विशेषताओं के कारण मानव के लिए उपयोगी साबित हुए हैं। इसके अंतर्गत हम बहुमूल्य रेशे प्रदान करने वाले पादपों एवं वनस्पतियों को देख सकते हैं, जैसे- कपास तथा रेशम प्रदान करने वाले पादपों को देख सकते हैं। इसी प्रकार वनस्पति तेल व घी इत्यादि को देख सकते हैं।
- **वैज्ञानिक महत्त्व:-** वैज्ञानिक दृष्टि से भी जैव-विविधता काफी महत्त्व रखती है क्योंकि प्रत्येक प्रजाति हमें यह संकेत दे सकती है कि जीवन का आरम्भ कैसे हुआ और यह भविष्य में कैसे विकसित होगा। किसी पारितंत्र का निर्माण किन घटकों तथा कारकों के संसर्ग में हुआ है। इसका निर्धारण वहाँ निहित जैव-विविधता के वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा किया जा सकता है।
- **उद्योग के क्षेत्र में:-** उद्योग भी विभिन्न प्रकार के पादप और प्राणी उत्पादों का उपयोग करके प्रजातियों की मूल्यांकन विविधता से लाभान्वित हो रहे हैं। संपूर्ण विश्व में लगभग 2000 पादप प्रजातियाँ अपने आर्थिक महत्त्व के लिए जानी जाती हैं। भवन, उपस्कर और कागज निर्माण उद्योग, सौ से अधिक वृक्षों की प्रजातियों का उपयोग करते हैं। कपास, अलसी, जूट और एगेव निर्माण, रस्सी आदि बनाने के लिए रेशों के स्रोत हैं। अनेकों प्रकार की पादप प्रजातियों से प्राप्त प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग रबर, रंगों, चर्म शोधन कारकों, कीटनाशकों आदि उत्पादों को तैयार करने में किया जाता है।
- **सांस्कृतिक महत्त्व:-** जैव-विविधता विभिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग दृष्टिकोण से महत्त्व रखती है। प्राकृतिक विविधता हमें सौन्दर्यात्मक आनंद प्रदान करती है। समृद्ध जैव-विविधता किसी क्षेत्र में पर्यटन को प्रोत्साहित करती है तथा इसके द्वारा हमें मनोरंजन के अवसर भी प्राप्त होते हैं। अनेक समुदाय व संस्कृतियाँ वातावरण तथा जैव-विविधता पूर्ण पर्यावरण द्वारा प्रदान किए गए संसाधनों के साथ सह-विकसित हुए हैं। इसलिए जैव-विविधता महत्त्वपूर्ण सामाजिक भूमिका भी निभाती है।

जैव-विविधता और पारिस्थितिक संतुलन

किसी पारितंत्र में उच्च स्तरीय विविधता उसे स्थायित्व प्रदान करती है। उदाहरणार्थ, अत्यंत जटिल पारिस्थितिक तंत्र जैसे उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में वन यदि न काटे जाएं, तो लम्बे समय तक अपरिवर्तित बने रह सकते हैं। दूसरी ओर, साधारण पारिस्थितिक तंत्र; जैसे- टुण्ड्रा अत्यंत भंगुर है। ये क्रियाएं सामूहिक रूप से ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करती हैं, जो जीवन के अस्तित्व के लिए स्वास्थ्यवर्धक हैं। एक से अधिक विविधता वाले पारिस्थितिक तंत्र में प्रजातियों की बहुत अधिक संख्या होने के कारण, अन्योन्य क्रियाएँ भी अधिक होती हैं, जिनके कारण बड़ा आहार जाल बनता है। इस परिस्थिति में जाति विलोपन से पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन पर मामूली प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत यदि किसी पारिस्थितिक तंत्र के आहार जाल में जातियों की संख्या कम हो, तो एक भी जाति के लोप होने से पारिस्थितिक तंत्र की अखण्डता पर गहरा प्रतिघात होता है। पिछले करीब 50 वर्षों से मानव जनसंख्या में असाधारण वृद्धि तथा औद्योगिक एवं कृषि विकास के कारण तमाम तरह की पर्यावरणीय विकृतियाँ होने लगी हैं और पर्यावरण भौतिक एवं रासायनिक रूप से प्रदूषित होने लगा है। इसके फलस्वरूप तमाम तरह के प्राणियों, वनस्पतियों तथा सूक्ष्मजीवों के नष्ट होने की संभावना बढ़ती जा रही है।

जीवों की प्रजातियों एवं जातियों के लगातार नष्ट होते रहने की प्रक्रिया को जैव विविधता क्षरण या जैव आनुवांशिक क्षरण के नाम से जाना जाता है। मृदा, जल और वायु के समान ही जैव-विविधता एक मुख्य प्राकृतिक संसाधन है, जिसका क्षरण पर्यावरण के लिए बहुत ही खतरनाक साबित हो सकता है, विशेषकर उन्नत कृषि तथा अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि के कारण जैव-विविधता काफी तीव्र गति से नष्ट हो रही है।

हॉटस्पॉटः जैव-विविधता उष्णस्थल (Bio-Diversity Hotspots)

जैव-विविधता उष्णस्थल या हॉटस्पॉट की अवधारणा प्रसिद्ध पर्यावरणविद् नॉर्मन मायर्स द्वारा सन् 1988 में प्रतिपादित की गयी थी। जैव-विविधता हॉटस्पॉट का आशय ऐसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र से है, जहाँ भारी जीव वैज्ञानिक विविधता और एक छोटे से क्षेत्र में ही उच्च स्तरीय स्थानीयता पाई जाती है तथा जहाँ प्रजातियों के विलोपन एवं आवासीय विध्वंस का तत्काल खतरा पाया जाता है। सामान्य शब्दों में कहें, तो जैव-विविधता हॉटस्पॉट से आशय उन क्षेत्रों से है, जो अन्य क्षेत्रों की तुलना की दृष्टि से समृद्ध होते हैं तथा वर्तमान में जहाँ की जैव-विविधता संकटग्रस्त है।

वर्ष 2004 में मेटमीरियर द्वारा अपनी पुस्तक 'हॉटस्पॉट रिविजिटेड' में इस संकल्पना का संशोधन किया गया।

हॉटस्पॉट के लिए आवश्यक दशाएं

- सामान्यत: जैव विविधता हॉटस्पॉट वे क्षेत्र हैं, जो स्थानीय प्रजातियों की उच्च स्तरीय विविधता दर्शाते हैं और ये प्रजातियाँ विश्व के अन्य भागों में नहीं पायी जाती।

- कम-से-कम 1500 पौधे स्थानीय प्रजाति के होने चाहिए।
- ऐसे क्षेत्र, जहाँ जैव-विविधता के मूल आवास का 70% भाग नष्ट हो गया हो।
- जैव-विविधता उष्ण स्थल या हॉटस्पॉट का समय-समय पर मूल्यांकन होता रहा है। प्रारम्भ में केवल 12 हॉटस्पॉट चिन्हित किए गए। परन्तु वर्ष 2019 तक संपूर्ण विश्व में 36 जैव-विविधता हॉटस्पॉटों की पहचान की जा चुकी है। वस्तुत: संपूर्ण विश्व के लगभग 11.8% क्षेत्र पर हॉटस्पॉट फैले हुए हैं।

हॉटस्पॉट का वितरण (Distribution of Hotspots)

पौधों तथा वनस्पतियों की प्रचुरता की दृष्टि से उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन सर्वाधिक समृद्ध हैं। इसके पश्चात् भूमध्य सागरीय प्रदेश का स्थान आता है। जैव-विविधता के अंतर्गत पारिस्थितिकी तंत्रों में विभिन्नता को भी शामिल किया जाता है। यही कारण है कि जैव-विविधता हॉटस्पॉट के सांद्रण में भी व्यापक अन्तर पाया जाता है। वस्तुत: हॉटस्पॉट का अधिकतम संकेन्द्रण अमेजन घाटी, पश्चिमी अफ्रीका और ब्राजील के अटलांटिक वनों में पाया जाता है। विषुवतरेखीय इन प्रदेशों में उच्च स्तरीय जैव विविधता, स्थानीय पौधे एवं जीव हैं और इन्हें मानव की अवांछित क्रियाओं से भारी जोखिम भी हैं। इसीलिए इन्हें हॉटस्पॉट की परिभाषा के अनुकूल माना जाता है।

वैश्विक हॉटस्पॉट के महत्त्वपूर्ण स्थलों का विवरण इस प्रकार है।

एशिया प्रशान्त (Asia Pacific)

- **न्यू कैलेडोनिया:**- ऑस्ट्रेलिया उपमहाद्वीप के पूर्वी भाग तथा दक्षिणी प्रशान्त महासागर में स्थित यह एक द्वीप-समूह है। यह स्थल अनेक स्थानीय पौधों से संपन्न है।
- **न्यूजीलैंड द्वीप समूह:**- यह पर्वतीय द्वीपों का समूह है जहाँ पर पहले शीतोष्ण कटिबंधीय वनस्पतियों की काफी सघनता पायी जाती थी। परन्तु जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण तथा बढ़ते मानवीय हस्तक्षेप ने इसे व्यापक रूप में प्रभावित किया है।
- **पोलीनेशिया-माइक्रोनेशिया:**- इस क्षेत्र के अंतर्गत लगभग 5000 द्वीप सम्मिलित हैं। पोलीनेशिया-माइक्रोनेशिया में 100 से अधिक स्थानीय पौधे तथा वनस्पतियाँ पाए गए हैं, परन्तु आक्रामक प्रजातियों के प्रवेश, मानवीय हस्तक्षेप तथा ज्वालामुखी उद्‌गार जैसे प्राकृतिक कारकों ने इस क्षेत्र की जैव-विविधता को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। यही कारण है कि यहाँ पर बहुत से जीव विलुप्त हो चुके हैं और स्थानीय वनस्पतियाँ भारी खतरे का सामना कर रही हैं।
- **दक्षिण-पश्चिम ऑस्ट्रेलिया:**- जैव-विविधता की दृष्टि से संपन्न यह क्षेत्र 356, 700 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। वन व झाड़ियों से आच्छादित यह प्रदेश स्थानीय पौधों एवं रेंगने वाले जीवों से समृद्ध है।
- **पूर्वी ऑस्ट्रेलिया के वन:**- वर्ष 2011 में शोधकर्त्ताओं की एक टीम द्वारा पूर्वी ऑस्ट्रेलिया क्षेत्र के जंगलों को 35वें जैव विविधता हॉटस्पॉट के रूप में चिन्हित किया गया था क्योंकि इस क्षेत्र में 2100 से अधिक स्थानिक संवहनीय प्रजातियाँ हैं जिनमें अपने मूल निवास की 77% नष्ट हो चुकी हैं।
- **जापानी द्वीप समूह:**- जापान भी एक द्वीपीय देश है जोकि उपोष्ण कटिबंध से उत्तर में शीतोष्ण कटिबंध तक विस्तृत है। विभिन्न प्रकार की जलवायविक उपस्थिति यहाँ स्थानीय जीवों, वनस्पतियों तथा पौधों के विकास हेतु अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं।
- **दक्षिण-पश्चिम चीन पर्वत:**- चीन के दक्षिण-पश्चिम में स्थित यूनान पर्वतीय प्रदेश तथा उसके आस-पास का क्षेत्र जैव विविधता की दृष्टि से काफी समृद्ध है।
- **पूर्वी मेलानेशियन द्वीप समूह:**- यह हॉटस्पॉट पृथ्वी पर उपस्थित भौगोलिक रूप से सबसे जटिल क्षेत्रों में से एक है। यह न्यू गिनी के उत्तर में स्थित 16000 से अधिक द्वीपों का एक विस्तृत भू-भाग है, जिसमें विभिन्न प्रकार के स्थानीय पौधे एवं पशु पाए जाते हैं। उल्लेखनीय स्थानिक प्रजातियों में राजसी सोलोमन मछली तथा उड़न लोमड़ी जैसी कई प्रजातियाँ शामिल हैं।
- **हिमालयन हॉटस्पॉट:**- जैव-विविधता की दृष्टि से यह काफी समृद्ध क्षेत्र है। इसका विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।
- **पश्चिमी घाट एवं श्रीलंका:**- इसका विस्तृत वर्णन भारतीय जैव-विविधता वाले अध्याय में किया गया है।
- **इण्डो-म्यांमार हॉटस्पॉट:**- यह हॉटस्पॉट लगभग 2,373,000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर फैला हुआ है जो सिक्किम, भूटान, पश्चिमी म्यांमार तथा चीन के यून्नान प्रांत में विस्तृत है। इसमें जैव-विविधता की प्रचुरता मिलती है। यहाँ पर पौधों की 13,500 प्रजातियां

हैं, जिनमें से 7000 (लगभग 52%) स्थानीय हैं। यहाँ पक्षियों की 1260 प्रजातियां हैं, जिनमें से 60 से अधिक स्थानीय हैं। इसी प्रकार यहाँ स्तनधारी जीवों की 70 प्रजातियां हैं, जिनमें से 7 प्रजातियां स्थानीय हैं।

- **फिलीपीन्स जैव-विविधता:-** यह विश्व के सर्वाधिक समृद्ध हॉटस्पॉटों में से एक है। लगभग 700 द्वीपों पर फैले इस क्षेत्र में स्थानिक जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों का एक बड़ा भाग यहाँ पाया जाता है। परन्तु अवैध शिकार तथा मानवीय हस्तक्षेप के कारण यहाँ की जैव-विविधता गंभीर संकट का सामना कर रही है।
- **पश्चिमी सुण्डा-इण्डोनेशिया मलाया तथा ब्रुनेई:-** जैव-विविधता हॉटस्पॉट की दृष्टि से इस क्षेत्र की गणना विश्व के चुनिंदा स्थलों में की जाती है। वस्तुत: यह हॉटस्पॉट मलेशिया, इण्डोनेशिया, बोर्नियो तथा सेलेबीज आदि देशों के लगभग 1000 हजार द्वीपों पर विस्तृत है।

उत्तर व मध्य अमेरिका (North and Central America)

- **कैलिफोर्निया फ्लोरिस्टिक प्रोविंस:-** यह क्षेत्र उत्तरी अमेरिका के दक्षिण-पश्चिम में प्रशांत तट पर स्थित है। कैलिफोर्निया का क्षेत्र भूमध्य जलवायु प्रदेश के अन्तर्गत आता है। यहाँ वर्षा मुख्यत: शीत ऋतु में होती है और ग्रीष्मकाल प्राय: शुष्क रहता है। इस क्षेत्र में स्थानिक प्रजातियों के साथ-साथ ओक, फर तथा डगलस के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पाये जाते हैं।
- **केरेबियन द्वीप समूह:-** सैकड़ों द्वीपों से निर्मित इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्रों की उपस्थिति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है जैसाकि इस द्वीप समूह का भौगोलिक उच्चावच पर्वतों की घाटियों के रूप में है। फलत: मानवीय आवास विकास के लिए यहाँ की जैव-विविधता को व्यापक रूप से नुकसान पहुँचाया गया है। निरंतर कृषि भूमि के विस्तार तथा अति चारण ने यहाँ की जैव-विविधता को गहरा आघात पहुँचाया है।
- **मेड्रियन पाइन-ओक कुडलैण्ड्स:-** यह क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका तथा मैक्सिको की सीमा रियो ग्रान्डे (Rio Grande) नदी के आस-पास में विस्तृत है। यहाँ पर ग्रीष्म ऋतु गर्म तथा शुष्क होती है। प्राय: दैनिक तापांतर भी अधिक होता है। यहाँ झाड़ीदार विरल वन, 500 से अधिक पक्षी प्रजातियाँ आदि स्थानिक रूप में पाई जाती हैं। मानवीय बस्तियों के विस्तार तथा औद्योगिक विकास ने इस क्षेत्र के जीव-जन्तुओं को गहरे स्तर तक प्रभावित किया है।
- **उत्तरी अमेरिकी तटीय मैदान-** हाल ही में इसे विश्व के 36वें हॉटस्पॉट की मान्यता दी गयी क्योंकि यहाँ 1500 से अधिक स्थानिक संवहनीय पौधे और 70 से अधिक निवास स्थानों का क्षय देखा गया।
- **मेसो अमेरिकन फॉरेस्ट:-** यह विश्व का तीसरा सबसे बड़ा जैव-विविधता हॉटस्पॉट है। इसकी अवस्थिति संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य में है। मेसो अमेरिकन फॉरेस्ट में अब तक लगभग 17000 से अधिक पौधों की प्रजातियाँ चिन्हित की गयी हैं।

दक्षिण अमेरिका (South America)

- **ट्रॉपिकल एंडीज:-** स्पेन के कुल भौगोलिक आकार के लगभग तीन गुने बड़े क्षेत्र में फैला हुआ उष्णकटिबंधीय एंडीज जैव विविधता हॉटस्पॉट पश्चिमी वेनेजुएला से उत्तरी चिली, अर्जेंटीना, कोलंबिया, इक्वाडोर, पेरू और बोलीविया तक विस्तृत है।
- **टुंब्स चोको-मैगडलेना:-** यह क्षेत्र पौधों और प्रजातियों की विविध प्रजातियों के लिए जाना जाता है।
- **ब्राजील सेरैडो:-** ब्राजील सेरैडो के अंतर्गत सवाना जीवोम का अधिकांश भाग सम्मिलित है और यह संपूर्ण ब्राजील के 21 प्रतिशत भू-भाग पर विस्तृत है। सेरैडो क्षेत्र में स्थानिक प्रजातियों के साथ-साथ जीव-जन्तुओं की विविधता स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है।
- **चिली शीतकालीन वर्षा:-** यह क्षेत्र आटाकामा मरुस्थल के आस-पास क्षेत्र में एण्डीज पर्वत प्रदेश के अंतर्गत आता है।
- **अटलांटिक वन:-** ब्राजील में स्थित इस जैव-विविधता हॉटस्पॉट की गिनती विश्व के सबसे सघनतम् हॉटस्पॉट में की जाती है। यहाँ के सदाबहार वनों को स्थानीय रूप में सेल्वास (Selvas) कहते हैं। इन वनों में पौधों की लगभग 20000 प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिनमें से लगभग 40% प्रजातियाँ स्थानिक हैं।

अफ्रीका (Africa)

- **पूर्वी अफ्रीका के तटीय वन:-** पूर्वी अफ्रीकन जैव-विविधता हॉटस्पॉट के तटीय वन अफ्रीका के पूर्वी समुद्र तट पर स्थित हैं। इसके अंतर्गत सोमालिया, केन्या, तंजानिया और मोजाम्बिक के तटीय क्षेत्र शामिल हैं। स्थानिक वृक्ष प्रजातियों की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है।
- **केप फ्लोरिस्टिक:-** यह दक्षिण अफ्रीका के दक्षिण में स्थित झाड़ी युक्त शुष्क प्रदेश है। यहाँ बहुत से ऐसे पौधे एवं पशु हैं जो विश्व के किसी अन्य क्षेत्र में नहीं पाए जाते हैं।

- **पश्चिमी अफ्रीका के गिनी वन:**- यह पश्चिमी अफ्रीका की निम्न भूमि है जहाँ पर अफ्रीका के एक-चौथाई से अधिक स्तनधारी जीव पाए जाते हैं। यहाँ वृक्षों की अनेक स्थानिक प्रजातियों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।
- **पूर्वी एफ्रोमोंटेन:**- यह उत्तर में सऊदी अरब तथा यमन से शुरू होकर दक्षिण में इथोपिया, केन्या, तंजानिया तथा जिम्बाब्वे तक विस्तृत रूप में फैला हुआ है। वस्तुत: यह पूर्वी अफ्रीका का पर्वतीय प्रदेश है। इसमें अक्षांश तथा समुद्र तट से ऊँचाई के अनुसार जलवायु में काफी विविधता पायी जाती है। इस हॉटस्पॉट के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के स्थानिक पौधे व जन्तु पाये जाते हैं।
- **हॉर्न ऑफ अफ्रीका:**- ये हॉटस्पॉट विशेष रूप में सोमालिया में चिन्हित किए गए हैं।
- **सुकुलेण्ट कारू (Succulent Karoo):**- सुकुलेन्ट हॉटस्पॉट नामीबिया और दक्षिण अफ्रीका के मध्य में स्थित है। इसका सम्पूर्ण विस्तार कालाहारी मरुस्थल के सीमावर्ती क्षेत्रों में फैला हुआ है। जहाँ वृक्षों एवं जन्तुओं की प्रचुर विविधता पाई जाती है।
- **मेडागास्कर:**- हिन्द महासागर में स्थित मेडागास्कर द्वीप जैव-विविधता की दृष्टि से काफी संपन्न है। इस द्वीप के चारों ओर समुद्री क्षेत्र भी जैव-विविधता हॉटस्पॉट की सूची में शामिल है। इस द्वीप पर पाँच भिन्न प्रकार की नर-वानर प्रजातियाँ, चार पक्षी प्रजातियाँ तथा आठ पौधों की ऐसी विशिष्ट प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जो विश्व के किसी अन्य भाग में नहीं पायी जाती हैं।
- **मापुटा लैंड-पोंडोलैंड अल्बानी:**- यह दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी हिन्द महासागरीय तट पर स्थित है।

यूरोप और मध्य एशिया (Europe and Central Asia)

- **काकेशस प्रदेश:**- यह जैव-विविधता विनाश की दृष्टि से काफी संवेदनशील क्षेत्र है। यह हॉटस्पॉट जॉर्जिया, आर्मेनिया और अजरबैजान के पर्वतीय प्रदेशों में स्थित है। नगरीकरण तथा मानवीय हस्तक्षेप के कारण यहाँ पर जीवों व वनस्पतियों को भारी क्षति पहुँची है।
- **पूर्वी मेडिटेरेनियन:**- पूर्वी मेडिटेरेनियन प्रदेश जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र है। यहाँ लगभग 22000 से अधिक स्थानिक जीवों एवं पौधों की प्रजातियाँ पायी गयी हैं।
- **इरानो-अनातोलियन प्रदेश:**- यह तुर्की के अनातोलिया पठार, उत्तरी इराक के कुर्दिस्तान, अलबुर्ज पर्वत तथा ईरान के दस्त-ए-कबीर आदि क्षेत्रों में फैला हुआ है। इसमें बहुत से ऐसे स्थानिक पौधे एवं जीव हैं, जो विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं पाए जाते हैं।
- **मध्य एशिया के पर्वत:**- यह हॉटस्पॉट हिन्दुकुश पर्वत शृंखला, कुनलुन पहाड़ियों तथा पामीर के पठार तक विस्तृत है। पर्वतीय ढलानों तथा घाटियों पर विविध प्रकार के जीव-जन्तु पाये जाते हैं जबकि खुले मैदानों में झाड़ियों के रूप में स्थानिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

जैव-विविधता के हॉटस्पॉट पृथ्वी की भूमि की सतह के केवल 2.3% का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन ये विश्व के पौधों की आधी से अधिक प्रजातियों को स्थानिक प्रजाति के रूप में अवलंबन प्रदान करते हैं। स्थानिक प्रजातियों से आशय उन प्रजातियों से है, जो कहीं और नहीं पाए जाते। कंजर्वेशन इंटरनेशनल (CI) ने इन जैव-विविधता की दृष्टि से संपन्न क्षेत्रों, जो विनाश के भारी खतरे का सामना कर रहे हैं, की पहचान करके उन्हें जैव विविधता उष्णस्थलों के रूप में प्रस्तुत किया है। सामान्यत: ये उष्णस्थल तीन आधारों पर पहचाने जाते हैं-

हालांकि, ये उष्णस्थल महाविविधता केन्द्रों (Megadiversity Centers) के समान राजनैतिक इकाई नहीं हैं, अपितु ये पारिस्थितिक तंत्र पर आधारित हैं। इनकी पहचान से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा उनके संरक्षण हेतु प्रयास करने में काफी सहायता मिली है।

कंजर्वेशन इंटरनेशनल (CI) द्वारा पहचाने गए जैव-विविधता उष्णस्थल:-

एशिया प्रशांत

- न्यू कैलेडोनिया
- न्यूजीलैण्ड
- पोलीनेशिया -माइक्रोनेशिया
- दक्षिण-पश्चिम ऑस्ट्रेलिया
- पूर्वी ऑस्ट्रेलिया के वन (न्यू)
- जापान
- दक्षिण-पश्चिम चीन के पर्वत
- पूर्वी मेलानेशियन द्वीप समूह
- हिमालय
- पश्चिमी घाट और श्रीलंका
- इण्डो-बर्मा

उत्तर तथा मध्य अमेरिका

- कैलिफोर्निया फ्लोरिस्टिक प्रोविंस
- कैरेबियन द्वीप समूह
- मेड्रियन पाइन-ओक कुडलैण्ड
- मेसो-अमेरिका

दक्षिण अमेरिका

- ट्रॉपिकल एंडीज
- ब्राजील मैरेंडो
- अटलांटिक वन
- टुंब्स-चाको-मैगडलेना
- चिली शीतकालीन वर्षा वन

अफ्रीका

- पूर्वी अफ्रीका के तटीय वन
- केप फ्लोरिस्टिक रीजन
- पश्चिमी अफ्रीका के गिनी वन
- पूर्वी एफ्रोमोंटेन
- हॉर्न ऑफ अफ्रीका (सोमालिया, इथियोपिया, इरीट्रिमा, जिबूती)
- सुकुलेन्ट कारू
- मेडागास्कर
- मापुटालैंड-पोंडोलैंड-अल्बानी
- वालेशिया

यूरोप और मध्य एशिया

- काकेशस
- इरानो-अनातोलियन
- मेडिटेरेनियन बेसिन

कंजर्वेशन इंटरनेशनल द्वारा प्रदत्त विश्व के 10 अत्यधिक संकटग्रस्त 'फॉरेस्टेड हॉटस्पॉट्स' की रैंकिंग शेष बचे मूल पर्यावास के प्रतिशत के अनुसार सूचीबद्ध है:- (2011-12)

होप स्पॉट तथा मिशन ब्लू

होप स्पॉट की अवधारणा 2009 में अमेरिकी समुद्र विज्ञानी डॉक्टर सिल्विया अर्ल ने प्रतिपादित की थी। होप स्पॉट समुद्र के ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ समुद्र के अन्दर महत्त्वपूर्ण वनस्पति और जीवों के लिए विशेष सुरक्षा की आवश्यकता होती है। ऐसे क्षेत्रों को चिन्हित करके उनका संरक्षण किया जाता है। इसके अंतर्गत ऐसे संरक्षित क्षेत्रों में भारी समुद्री जहाजों, पनडुब्बियों तथा ऑयल शिप इत्यादि का प्रवेश वर्जित होता है। ध्यातव्य है कि डॉक्टर सिल्विया अर्ल की इस अवधारणा को IUCN ने भी अपनी मान्यता प्रदान की है।

मिशन ब्लू (Mission Blue)

यह डॉ. सिल्विया द्वारा चलाई गई एक पहल है, जिसमें जनसमर्थन के माध्यम से संरक्षित समुद्री क्षेत्रों का एक वैश्विक नेटवर्क तैयार करने की योजना है। इसके अंतर्गत 2020 तक समुद्री क्षेत्र के 20 प्रतिशत हिस्से को संरक्षित करने का लक्ष्य है। वर्तमान में विश्व भर में होप स्पॉट्स की संख्या 76 है। ध्यातव्य है कि 2013 में भारत के अंडमान निकोबार एवं लक्षद्वीप को भी होप स्पॉट के अंतर्गत शामिल कर लिया गया है।

महाविविधता तथा महाविविधता वाले देश

यदि जैव-विविधता का अध्ययन राष्ट्रों को एक इकाई मानकर किया जाता है, तो यह पाया जाएगा कि इस प्रकार की कुछ या छोटी इकाईयाँ बहुत ही बड़ी मात्रा में विश्व की जैव-विविधता को संतुलित करती हैं। वास्तव में यह पाया गया कि पूरे विश्व की जैव-विविधता का 60 से 70% भाग मात्र 17 देशों में संकेन्द्रित है। जैव-विविधता के संकेन्द्रण ने ही विश्व के कुछ भागों में महाविविधता की संकल्पना दी है। इसमें से कुछ मेडागास्कर जैसे छोटे से ही क्षेत्र में बहुत अधिक मात्रा जैव-विविधता को समायोजित करते हैं।

महा जैव-विविधता की अवधारणा

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार महाजैवविविधता के संदर्भ में निम्नलिखित तथ्य सुझाए गए हैं:-

- UNEP के अनुसार, सभी देशों की जैव-विविधता का अपना अलग महत्त्व है और यह किसी भी देश के अस्तित्व के लिए अनिवार्य तत्व है। साथ ही, यह राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय विकास का मूल संघटक है।

- जैव-विविधता का विश्व वितरण है और यह उष्णकटिबंधीय असमान क्षेत्रों में सर्वाधिक केंद्रीय है।
- सीमित प्राकृतिक संसाधनों के साथ अधिकतम प्रभाव के लिए हमें उन देशों पर निर्भर (पूर्णतया नहीं) रहना पड़ेगा, जो जैव विविधता एवं स्थानीयता (Endemism) में समृद्ध हैं और खतरनाक स्थिति का सामना कर रहे हैं। ऐसे क्षेत्रों के विकास व उन्नयन के लिए (प्राकृतिक आवासों को पुनर्योजित करना) प्रोत्साहित करना।
- जैव-विविधता से समृद्ध देशों में पारिस्थितिकी तंत्रों का व्यापक क्षय हो रहा है।

ऐसे 17 देशों की पहचान महाविविधता केन्द्र के रूप में की गयी है, जो इस प्रकार हैं:-

1.	ब्राजील	7.	पेरू	13.	पापुआ-न्यू-गिनी
2.	इण्डोनेशिया	8.	मलेशिया	14.	दक्षिण अफ्रीका
3.	कोलम्बिया	9.	मेडागास्कर	15.	संयुक्त राज्य अमेरिका
4.	भारत	10.	मैक्सिको	16.	कांगो-गणराज्य
5.	चीन	11.	ऑस्ट्रेलिया	17.	वेस्टइंडीज
6.	इक्वाडोर	12.	फिलीपींस		

स्मरणीय है कि भारत भी महाविविधता केन्द्रों में से एक है। भारत की जैव-विविधता के सर्वेक्षण के लिए राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान तथा अन्य संस्थाएँ जैव-विविधता के आंकड़ों को मजबूती देने में लगी हुई हैं। भारत के कुल क्षेत्रफल के सिर्फ 70% भाग का ही अब तक सर्वेक्षण हुआ है। इस कारण भारत की सम्पूर्ण जैव-विविधता एवं इसकी संभावना के बारे में हमारी जानकारी अपर्याप्त है।

मापदंड

महाविविधता का प्रमुख मापदंड स्थानिकता है, जो सर्वप्रथम प्रजाति के स्तर पर और फिर उच्च वर्गकीय स्तरों; जैसे- वंश और परिवार पर लागू होती है। एक महाविविधतायुक्त देश के रूप में वही देश चिन्हित किए जा सकते हैं, जो निम्नलिखित विशिष्टताओं को धारण करते हों-

- संबंधित देश में विश्व के कम से कम 5000 पादप या पौधे स्थानिक प्रजाति के रूप में पाए जाते हों।
- संबंधित देश की सीमाओं के भीतर समुद्री पारिस्थितिक तंत्र भी हो।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

- कंजर्वेशन इंटरनेशनल के अनुसार, विश्व की अर्थव्यवस्था का कम-से-कम लगभग 40 प्रतिशत और गरीबों की आवश्यकता का लगभग 80 प्रतिशत जैविक संसाधनों से प्राप्त होता है।
- एक समुदाय के जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों एवं दूसरे समुदायों के जीव-जन्तुओं व वनस्पतियों के बीच पाई जाने वाली विविधता को सामुदायिक विविधता कहते हैं।
- जैव-विविधता का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू पारिस्थितिक तंत्र का निर्वहन करना है।
- जैव-विविधता मृदा निर्माण, मृदा अपरदन की रोकथाम तथा अपशिष्ट रिसाइकल जैसे क्रियाकलापों के माध्यम से मानव अस्तित्व के लिए आधार बनी हुई है।
- अक्षांशों में प्राय: उच्च अक्षांश से निम्न अक्षांश की ओर तथा पर्वतीय क्षेत्रों में ऊपर से नीचे की ओर आने पर प्रजातियों की संख्या में अंतर जैव-विविधता की प्रवणता कहलाती है।
- ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर जाने पर जैव-विविधता सघनता में वृद्धि होती जाती है।
- पर्वतीय क्षेत्रों में जैसे-जैसे हम ऊँचाई पर जाते हैं वहाँ जैव-विविधता में कमी हो जाती है।
- विषुवत् रेखीय प्रदेश व उष्णकटिबंधीय वर्षा वन में सबसे अधिक औषधीय पादप पाए जाते हैं।
- 'हॉट स्पॉट' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग नॉर्मन मायर्स द्वारा 1988 ई. में किया गया था।
- विश्व में कुल 36 हॉटस्पॉट वाले क्षेत्र चिन्हित किए गये हैं। विश्व की लगभग 60% प्रजातियाँ इन्हीं क्षेत्रों में पायी जाती हैं।
- किसी भी क्षेत्र को जैव-विविधता हॉटस्पॉट के रूप में घोषित करने के लिए दो मानदण्ड निर्धारित किए गए हैं।

  -संवहनीय पौधों की लगभग 1500 प्रजातियां स्थानिक हों।

  -ऐसा क्षेत्र, जिसका 70% से अधिक मूल पर्यावास नष्ट हो चुका हो और 30% मूल प्राकृतिक वनस्पति विलुप्ति के कगार पर हो।
- अमेजन घाटी के वनों का तेजी से विनाश हो रहा है।

अध्याय 6

भारत की जैव-विविधता
Bio-Diversity of India

भारत एक जैव-विविधता संपन्न देश है। दुनिया की भूमि के 2.4 प्रतिशत भूमि का प्रतिनिधित्व करने वाले भारत की जैव-विविधता में 8 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। देश की जलवायु तथा उसकी भौगोलिक स्थिति उसे जैव-विविधता संपन्न देश बनाती है। भारत की गिनती दुनिया के कुल 12 विराट जैवविविधता (Megadiversity) वाले देशों में होती है। भारत में 45,000 पौधों की प्रजातियाँ पायी जाती हैं जो विश्व के कुल 7 प्रतिशत पौधों का प्रतिनिधित्व करती हैं जबकि देश में जन्तुओं की कुल 75,000 प्रजातियाँ पायी जाती हैं जो विश्व के कुल 6.5 प्रतिशत जन्तुओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। देश के 33 प्रतिशत पौधे तथा 62 प्रतिशत जन्तु देश के लिए स्थानिक (Endemic) हैं अर्थात् ये दुनिया के अन्य देशों में नहीं पाये जाते हैं। अब तक देश की कुल 45,000 वनस्पति प्रजातियों में 5,000 प्रजातियाँ शैवालों की, 20,000 प्रजातियाँ कवकों की, 16,000 प्रजातियाँ लाइकेन्स की, 2,700 प्रजातियाँ ब्रायोफाइट्स की, 600 टेरिडोफाइट्स की तथा 15, 000 पुष्पीय पौधों की प्रजातियों की पहचान तथा वर्णन किया गया है। इनमें 1,082 प्रजातियों वाले आर्किड्स की विशेष रूप से भारी विविधता भी शामिल है। देश की पुष्पीय प्रजातियों में से लगभग 1,000 प्रजातियाँ विभिन्न कारणों से संकटग्रत श्रेणी में पहुँच चुकी हैं।

जहाँ तक जन्तुओं की विविधता का सवाल है, भारत 60,000 कीटों की प्रजातियों, 1,700 मछलियों, 1,200 पक्षियों, 540 सरीसृपों, 200 जलथलचारी 6,500 अकशेरुकी, 1,000 मोलस्का तथा 500 स्तनपायी प्रजातियों का घर है जिसमें से 62 प्रतिशत जलथलचारी तथा 32 प्रतिशत सरीसृप भारत के लिए स्थानिक हैं। अकेले भारतीय उपमहाद्वीप (Indian sub-continent) ने दुनिया को लगभग 320 जंगली जानवरों को दिया है जिनका उत्पत्ति स्थल भारत है। पशु विविधता भी अधिक है। मवेशियों की 27, भेड़ों की 40 तथा बकरियों की 22 नस्लें देश में उपलब्ध हैं।

भारत का उत्तर-पूर्व, पश्चिमी घाट, पश्चिमी तथा उत्तरी-पश्चिम हिमालय स्थानिकता (Endemism) में संपन्न हैं। कम से कम 200 स्थानिक प्रजातियाँ, अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह में पायी जाती हैं। भारत में कृषि की परंपरागत फसलों में धान एवं अनेक दूसरे अनाज, सब्जियों और फलों की 30,000 से 50,000 प्रजातियाँ हैं। भारत ने दुनिया को 167 प्रजातियों के पौधों के साथ-साथ 320 जंगली प्रजातियों तथा धरती प्रजातियों (Land races) एवं पालतू पशुओं की विभिन्न प्रजातियों को दिया है। पटसन (कार्कोरस केप्सुलेरिस), कटहल (आर्टोकार्पस हेट्रोफिलस), अदरक (जिंजिबर आफिसिनेल), काली मिर्च (पाइपर नाइग्रम) तथा बांस (बैम्बुसा बैम्बास) की उत्पत्ति भारत में हुई है।

जैव-विविधता के मुख्य स्थल वे स्थान हैं जो जैव-विविधता संपन्न होते हैं लेकिन वहाँ जैविक दबाव के कारण वनस्पतियों तथा जन्तुओं की विलुप्ति का खतरा है। दुनिया में कुल 18 जैव-विविधता के मुख्य स्थलों में से 2 भारत में पाये जाते हैं। पश्चिमी घाट तथा पूर्वी हिमालय भारत में जैव-विविधिता के मुख्य स्थल हैं।

भारतीय जैव-विविधता का वर्गीकरण

भौगोलिक दृष्टि से भारत की अवस्थिति एशिया महाद्वीप में विशिष्ट है। यहाँ विश्व की लगभग समस्त प्रकार की जलवायु, वनस्पति आदि विद्यमान है। "जीव-जन्तु एवं प्राणियों की इतनी प्राचीन एवं वनस्पतियों की इतनी प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रजातियाँ यहाँ विद्यमान हैं, उतनी किसी अन्य देश में नहीं।" भारत में प्राकृतिक वासों की विविधता है, जिससे जीव-जंतुओं एवं प्राणियों में विविधता उत्पन्न हुई है। वर्तमान समय में हमारे देश में मुख्य रूप से भारतीय मलायन, इथोपियन, यूरेशियन आदि वन्य जीवों का मिश्रण मिलता है। जैव-विविधता के संदर्भ में भारत विश्व के 10 एवं शीर्ष 4 देशों में आता है। विश्व के केवल 2.4% भू-भाग होने के बावजूद भारत में वैश्विक जैव-विविधता का लगभग 7% भाग पाया जाता है और इसके साथ ही यहाँ मानव जनसंख्या का लगभग 17% निवास करता है।

भारतीय जैव-विविधता को चार वर्गों में वगीकृत किया जा सकता है:-

- **भारतीय स्थानक जैव-विविधता:-** भारत की स्थलाकृतिक विन्यास एवं जलवायविक विषमता के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के यहाँ प्राकृतिक वासों का निर्माण हुआ है। प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्रों में जहाँ सघन वानस्पतिक आवरण हैं, वहाँ भारतीय जैव-विविधता विद्यमान है।

- **मलायन जैव-विविधता:-** पूर्वी हिमालय की घाटियों में जहाँ सघन वनों का आवरण है तथा समुद्र तटीय क्षेत्रों में मलायन जैव-विविधता स्पष्ट है।
- **इथोपियन जैव-विविधता:-** राजस्थान तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में जहाँ शुष्क वातावरण है, वहाँ इथोपियन जैव-विविधता पायी जाती है।
- **यूरोपियन जैव-विविधता:-** उच्च हिमालयी क्षेत्रों में जो वर्ष के अधिकांश समय तक हिमाच्छादित रहते हैं, वहाँ यूरोपियन जैव-विविधता है।

जैव विविधता को प्रदर्शित करने वाले विभिन्न कारक:-

- **क्षेत्र (Realms):-** भारत का जैव-भौगोलिक क्षेत्र बहुत विस्तृत है। अत: इसका पारिस्थितिक तंत्र में विशेष योगदान है। विभिन्न वनस्पतियों एवं पशु प्रजातियों के आधार पर भारतीय क्षेत्र को दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है:-
  - **हिमालय क्षेत्र:-** इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार की वनस्पति, पेड़-पौधे, पशु एवं जीवों की प्रजाति आदि पाये जाते हैं।
  - **उपमहाद्वीपीय क्षेत्र:-** इसके अंतर्गत भारत के पूर्वी क्षेत्र के साथ-साथ तटीय क्षेत्र एवं प्रमुख तटीय राज्य आते हैं, जिसे मलायन जैव-विविधता से जाना जाता है।

जीवोम

इसका आशय मौसमी घटकों के आधार पर सजीव पेड़-पौधों एवं जीव-जन्तुओं के समूह से है; जो एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में पाये जाते हैं। भारत जीवोम के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र निम्नवत हैं:-

- उष्णकटिबंधीय नम वन
- गर्म मरूस्थल
- अल्पाइन उष्णभूमि
- उष्णशुष्क एवं पतझड़ वन
- सदाबहार वन

जैव-भौगोलिक क्षेत्र

इसके अंतर्गत वनस्पति एवं जन्तुओं के भौगोलिक विस्तार को प्रदर्शित किया गया है जिसके अंतर्गत निम्नलिखित जैव भैगोलिक क्षेत्र आते है:-

ट्रांस हिमालय (The Trans Himalayan Region)

विभिन्न मौसमी दशाएं उपलब्ध होने के कारण यह क्षेत्र अत्यंत शुष्क एवं ठंडा है। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग हिम एवं पत्थर से ढका हुआ है। वनस्पतियों में यहाँ निम्नता होने के कारण यहाँ केवल अल्पाइन ही पाये जाते हैं। यह भारत के 5.7% भू-भाग को कवर करता है, जिसका विस्तार तिब्बत के पठार से लेकर लद्दाख तक फैला हुआ है। जंगली जंतुओं में भेड़, बकरी, आइबेक्स, हिम लेपर्ड, सफेद बिल्ली, मैमथ एवं काली गर्दन वाला सारस आदि पाये जाते हैं।

हिमालय (The Himalayan Region)

यह भौगोलिक क्षेत्र उत्तर-पूर्वी भारत से लेकर उत्तर-पश्चिम भारत (J&K) तक विस्तृत है। विषुवत रेखा के निकट होने के कारण पूर्वी हिमालय में वर्षण अधिक होता है। अत: इस क्षेत्र की जैव विविधता, उत्तर पश्चिमी हिमालय क्षेत्र की अपेक्षा अधिक है। ऊँचाई में वृद्धि के साथ-साथ इस क्षेत्र में उष्णकटिबंधीय वनों के साथ टुण्ड्रा वन भी पाये जाते हैं। अत: इस क्षेत्र में हिम तेन्दुआ, भालू आदि जानवरों का वास पाया जाता है। जैव विविधता की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय रेगिस्तान (Indian Desert)

यह अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र भारत के पश्चिमी भाग में पाया जाता है, जिसके अंतर्गत अरावली श्रेणी के साथ-साथ लवण युक्त झीलें, मरूस्थल आदि आते हैं। भारत के इस भाग का देश के कुल क्षेत्रफल में 6.9% का योगदान है। अत: इस क्षेत्र में जीवों की प्रमुख प्रजातियों में ब्लैक बक (Black Buck), नीलगाय, जंगली गधे, चिंकारा, मरूस्थली लोमड़ी, ग्रेट इंडियन बस्टर्ड, फ्लेमिंगो आदि मिलते हैं जो भारतीय जैव-विविधता की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण हैं।

गंगा का विशाल मैदान (The Great Region of Gangatic Plain)

यह क्षेत्र भारत के उत्तरी भाग में उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल तक विस्तृत है, जो भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र में 11% का योगदान देता है। गंगा का मैदान, भारत के सबसे अधिक उर्वरक क्षेत्रों में से एक है। मृदा की उर्वरता के साथ इसे कई वर्गों में विभाजित किया गया है। तराई भाग, भाबर, खादर, निचला गंगा का क्षेत्र आदि प्रमुख उपजाऊ क्षेत्र है जो कि देश के कुल कृषि

उत्पादन में विशेष योगदान देते हैं। दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में मैंग्रोव वनों की उपलब्धता से यहाँ जीव-जन्तुओं में अधिकतर वृद्धि देखी जाती है। यहाँ के जन्तुओं में गैंडा, ब्लैक बक, हाथी, कछुए, मछलियां, घड़ियाल तथा विभिन्न प्रकार के कीट पतंगे आदि मिलते हैं।

अर्द्ध शुष्क क्षेत्र (Semi-Arid Region)

इसके तहत दक्कन का पठार तथा पश्चिमी रेगिस्तान के मध्य का क्षेत्र आता है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 15.6% भाग है। इस क्षेत्र की वनस्पतियों में यूफोर्बिया, घास आदि मिलते हैं। उष्णकटिबंधीय कटीले वन यहाँ की प्रमुख वनस्पति है। उष्णकटिबंधीय जलवायु हाने के कारण यहाँ जीव-जंतुओं में भिन्नता पायी जाती है। इस क्षेत्र के जीवों में एशियाटिक शेर, चीता आदि प्रमुख हैं।

दक्कन प्रायद्वीपीय क्षेत्र (Deccan Peninsular Region)

यह दक्षिण भारत का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, इसका विस्तार पूर्वी घाट से लेकर पश्चिमी घाट तथा सतपुड़ा पहाड़ियों के मध्य तक है। यह भारत का सर्वाधिक विस्तृत जैव-भौगोलिक क्षेत्र है जो कि संपूर्ण भू-दृश्य के 43% भाग पर है। इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियाँ नर्मदा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा, ताप्ती आदि प्रमुख हैं, यहाँ मुख्यत: काली, लाल मृदा के साथ विभिन्न फसलों की खेती की जाती है। वनस्पति में उष्णकटिबंधीय वन, खट्टे फल आदि प्रमुख रूप से उगते है। जीवों की दृष्टि से इस क्षेत्र का अत्यंत महत्त्व है। यहाँ बारहसिंगा, बाघ, भालू, जंगली भैंसा, जंगली सुअर, हाथी आदि जन्तु पाये जाते हैं।

तटीय एवं द्वीपीय क्षेत्र (Coastal and Island Region)

भारत में तटीय क्षेत्र का विस्तार दक्षिण-पूर्व से लेकर, दक्षिण एवं उत्तर पश्चिम तक फैला है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह नगण्य है, परन्तु जैव-विविधता की दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व है। इन क्षेत्रों में मैंग्रोव वनों की अधिकता होने के साथ विभिन्न प्रकार के जीव जंतु-डॉल्फिन, घड़ियाल, डुगोंग, एवीफौना आदि पाये जाते हैं। इसके पूर्वी तट पर स्थित सुन्दरवन 'रॉयल बंगाल टाइगर' के लिए प्रसिद्ध है।

भारत में जैव-विविधता की दृष्टि से द्वीपीय क्षेत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस क्षेत्र का विस्तार अंडमान द्वीप के उत्तर में स्थित निकोबार से लेकर लक्षद्वीप आदि तक है, जो कुल भू-दृश्य का 0.03% भाग है। इन द्वीपों में विभिन्न प्रकार की प्रवाल भित्तियाँ पायी जाती हैं। यह क्षेत्र औषधीय वनस्पति की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जीवों में यहाँ डॉल्फिन, प्रवाल भित्ति विभिन्न प्रकार की मछलियाँ आदि प्रमुख है। मत्स्य क्षेत्र में इसका विशेष योगदान है।

भारत के विभिन्न जैव-विविधता वाले क्षेत्र

जैव-विविधता संपन्नता की दृष्टि से भारत विश्व के अग्रणी देशों में आता है। वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओं की बहुत सी ऐसी प्रजातियाँ हैं जो सिर्फ भारतीय जैव-विविधता की विशेषता को प्रदर्शित करती हैं। विभिन्न पर्यावरणीय दशाओं की उपस्थिति ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विविध प्रकार के जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों का विकास किया है। भारत में चिन्हित किए गए हॉटस्पॉट में कम-से-कम 1.5 लाख स्थानिक प्रजातियों के पौधे हैं, जो विश्व के कुल संवहनीय पौधों का लगभग 50% है। सम्मिलित रूप में तो स्तनधारियों, सरीसृपों, पक्षियों और उभयचरों की 11980 प्रजातियाँ, हॉटस्पॉट प्रजातियाँ (सभी स्थलीय कशेरुकियों का 42 प्रतिशत) हैं। जबकि कशेरुकी प्रजातियों में से विश्व की लगभग 77% यहाँ निवास करती हैं। इसके अतिरिक्त हॉटस्पॉट के अनुमानित 3400 से अधिक मीठे पानी की मत्स्य प्रजातियाँ स्थानिक हैं, जिनकी संख्या वास्तव में और अधिक हो सकती है। जैव-विविधता की दृष्टि से भारत को निम्नलिखित क्षेत्रों में चिन्हित किया गया है-

- भारत के हॉटस्पॉट क्षेत्र
- समुद्री जैव-विविधता क्षेत्र
- भारत के जैव भौगोलिक क्षेत्र

भारत में जैव-विविधता हॉटस्पॉट (Bio-Diversity Hotspot in India)

जैव-विविधता से संपन्न भारत में वैश्विक प्रजातियों की लगभग 7 से 8% प्रजातियाँ पायी जाती हैं। पौधों की 45000 और जन्तुओं की 91000 प्रजातियों की उपस्थिति के कारण भारत जैव-विविधता से संपन्न देशों में विशिष्ट स्थान रखता है। अब तक विश्व में कुल 36 हॉटस्पॉट क्षेत्रों की पहचान की गयी है। इन क्षेत्रों में संपूर्ण विश्व की 60% प्रजातियाँ पाई जाती हैं। भारत में कंजर्वेशन इंटरनेशनल द्वारा जैव-विविधता हॉटस्पॉट के चार केन्द्रों की पहचान की गयी है, जो इस प्रकार हैं:-

भारत में चिन्हित किए गए हॉटस्पॉट में कम से कम 1.5 लाख स्थानिक प्रजातियों के पौधे हैं, जो विश्व के कुल संवहनीय पौधों का लगभग 50% है।

हिमालयी प्रदेश

हिमालयी जैव-विविधता हॉटस्पॉट के अंतर्गत भारत के उत्तराखण्ड, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश एवं उपहिमालयी दार्जिलिंग, नेपाल, भूटान तथा चीन के यून्नान प्रांत के समृद्ध जीवीय समुदायों को सम्मिलित किया जाता है। हिमालयी प्रदेश में 10,000 से अधिक पौधों की

प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इनमें से 32 प्रतिशत पादप प्रजातियाँ स्थानिक हैं। अकेले सिक्किम (भौगोलिक क्षेत्रफल-7298 वर्ग किलोमीटर) में 4200 पादप प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से 36 प्रतिशत प्रजातियाँ स्थानिक हैं। उल्लेखनीय है कि कई हिमालयी प्रदेशों में पादप प्रजातियों की बड़ी संख्या सही में सामान्य रूप में पायी जाती है क्योंकि भारत, नेपाल तथा भूटान में इन प्रजातियों का अतिव्यापन हुआ है।

इण्डो-म्यांमार जैव-विविधता हॉटस्पॉट

यह गंगा-ब्रह्मपुत्र निम्न भूमि के पूर्व में स्थित है, जिसे 2005 में पृथक हॉटस्पॉट का दर्जा प्रदान किया गया। इण्डो-म्यांमार हॉटस्पॉट लगभग 2,37,3000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर फैला हुआ है जो सिक्किम, भूटान पश्चिमी म्यांमार तथा चीन के यून्नान प्रांत में विस्तृत है। इसका प्रमुख लक्षण यह है कि इसमें ऊँचाई, उच्चावच, जलवायु, मृदा व वनस्पति संबंधी बहुत अधिक विविधता पायी जाती है जिससे यहाँ पर जैव विविधताएं पाई जाती हैं। यहाँ पर पौधों की 13000 प्रजातियाँ हैं जिनमें लगभग 52% स्थानीय हैं। यहाँ पक्षियों की 1260 प्रजातियाँ हैं, जिनमें से 60 से अधिक स्थानीय हैं। इसी प्रकार यहाँ स्तनधारी जीवों की 70 प्रजातियाँ हैं जिनमें से 7 प्रजातियाँ स्थानीय हैं। इण्डो-म्यांमार हॉटस्पॉट जैव विकास की दृष्टि से काफी सक्रिय है। इस हॉटस्पॉट में लगभग 160 सरकंटापन्न प्रजातियाँ हैं जिनमें एक सींग वाला गैंडा, उड़न गिलहरी, एशियाई हाथी, स्नो-लैपर्ड आदि शामिल हैं।

पश्चिमी घाट जैव-विविधता हॉटस्पॉट प्रदेश

जैव-विविधता हॉटस्पॉट की दृष्टि से पश्चिमी घाट काफी महत्त्वपूर्ण है। पश्चिमी घाट जैव-विविधता हॉटस्पॉट प्रदेश में पायी जाने वाली समस्त प्रजातियों का 52 प्रतिशत भाग स्थानिक प्रजातियों का है। पश्चिमी घाट पारिस्थितिक तंत्र का विस्तार महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल के पश्चिमी भागों में पाया जाता है। अगस्तमलाई पहाड़ी तथा शांत घाटी इस प्रदेश के अति महत्त्वपूर्ण समृद्ध जैव-विविधता हॉटस्पॉट क्षेत्र हैं। इस प्रदेश में सदाबहार तथा पर्णपाती वनों के पौधों की स्थानिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं, परन्तु निर्वनीकरण एवं कई विकासशील परियोजनाओं के क्रियान्वयन के कारण इस प्रदेश के आवासों एवं जैव-विविधता को तेजी से नष्ट होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। परिणामस्वरूप पौधों एवं जन्तुओं की दुर्लभ प्रजातियाँ संकटापन्न हो गयी हैं। यहाँ पर लगभग 6000 शिरा संबंधी (Vascular) पौधों की प्रजातियाँ हैं, जिनमें से लगभग 35 स्थानीय हैं। लगभग 150 स्तनधारी जीव हैं, जिनमें लगभग 3000 स्थानीय (Endemic) हैं। यहाँ पर 450 से अधिक पक्षियों की प्रजातियाँ हैं। इस प्रकार पश्चिमी घाट जैव विविधता की दृष्टि से विश्व के सबसे समृद्ध स्थलों में से एक है।

सुंडालैण्ड क्षेत्र

इसका विस्तार भारत के ग्रेट निकोबार द्वीप से लेकर 'ट्रिनकेट सहित नानकउरी द्वीपसमूह', इण्डोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर, ब्रुनेई एवं फिलीपींस तक है। समुद्री एवं स्थलीय जैव-विविधता की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। मैंग्रोव, कोरल रीफ, सीग्रास बेड, व्हेल, इयूगॉन्ग, कछुआ, मगरमच्छ एवं प्रान आदि यहाँ की प्रमुख प्रजातियाँ हैं। इसके अतिरिक्त समुद्र तटीय क्षेत्र भी जैव-विविधता की दृष्टि से काफी संपन्न हैं। भारत का समुद्रतटीय क्षेत्र 7,516.6 तक विस्तृत है। मैंग्रोव, प्रवाल भित्ति एवं एश्चुअरी समुद्री जैव-विविधता क्षेत्रों के अंतर्गत शामिल किए जाते हैं। जहाँ पर्यावरणीय जैव विकास की अनुकूल स्थिति के कारण जीवों की प्रजातियों की प्रचुरता पायी जाती है। प्रवाल समुद्री जैव-विविधता का एक विशिष्ट उदाहरण है। समुद्री घास, मैंग्रोव, मोलस्क (घोंघा आदि), क्रस्टेशियन, पॉलीकीट्स आदि समुद्री जैव-विविधता के अन्य सांगोपांग हैं।

समुद्री जैव-विविधता

भारत में तटीय एवं द्वीपीय सामुद्रिक जैव-विविधता का विस्तृत भण्डार मौजूद है। पश्चिमी तटीय क्षेत्र में गुजरात के कच्छ से लेकर केरल तट तक विविध रूप में जैव-विविधता देखी जा सकती है। इसी प्रकार पूर्वी घाट विशेषकर पश्चिम बंगाल व ओडिशा का तट मैंग्रोव वनस्पतियों से समृद्ध है। अंडमान निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप समूह न केवल विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों से आच्छादित है अपितु केरल, मूंगा, प्रवाल भित्तियों जैसे बहुमूल्य समुद्री घास की भी कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

भारत की जैव-विविधता की प्रचुरता के कारण

भारत एक उपमहाद्वीपीय आकार वाला देश है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 32.8 लाख वर्ग किमी. है। भारतीय भू-खण्ड प्राच्य जैव-भौगोलिक प्रदेश का महत्त्वपूर्ण भाग है, जिसमें बलूचिस्तान से लेकर म्यांमार तक दक्षिण एशिया, दक्षिण पूर्वी एशिया तथा हिन्द महासागर के कुछ द्वीप सम्मिलित हैं। भारत की जैव-विविधता संपन्नता में उच्चावच संबंधी विविधता का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारत में लगभग 100 मिलियन हेक्टेयर पर्वतीय तथा 30 मिलियन हेक्टेयर मरूस्थलीय एवं 30 मिलियन हेक्टेयर अर्द्ध-मरुस्थलीय क्षेत्र है।

भारत में जलवायु, तापमान तथा वर्षा प्रारूप में भी विभिन्नता देखी जाती है। जहाँ एक तरफ राजस्थान के बाड़मेर में दिन का तापमान 45° से 50° सेल्सियस तक पहुँच जाता है, वहीं दिसम्बर-जनवरी के महीने में सियाचिन व द्रास में तापमान -40°C से -42°C

तक पहुँच जाता है। इस प्रकार वार्षिक वर्षा उत्तर-पूर्वी भाग तथा पश्चिमी तटीय प्रदेश में 250 से.मी. से अधिक होती है और जैसलमेर तथा लेह में 10 से.मी. से भी कम होती है। इस विभेदीकृत मौसमी या जलवायविक उपस्थिति ने विभिन्न स्थानिक विशिष्टताओं से युक्त वनस्पतियों, वृक्षों व जीव-जन्तुओं के विकास हेतु अनुकूल वातावरण निर्मित किया है।

महाविविध देश (Mega Diverse Country)

महाविविध देश का आशय विश्व के शीर्ष जैव-विविधता समृद्ध देशों से संबंधित है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के विश्व संरक्षण निगरानी केन्द्र (UNEP-WCMC) द्वारा वर्ष 1988 से इस संदर्भ में कार्य किया जा रहा है।

महाविविध देश की अवधारणा को चार प्रमुख प्राकलनों द्वारा प्रदर्शित करते हैं, जो निम्नवत् हैं:-

- प्रथम, महाजैव विविधता राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय विकास का मूल संघटक है।
- द्वितीय, महाजैव विविधता का विश्व वितरण सभी क्षेत्रों में एक समान नहीं है। हालांकि उष्णकटिबंधीय कुछ देशों में इसका सर्वाधिक संकेंद्रण है।
- तृतीय, कुछ अति समृद्ध क्षेत्र में स्थित पारितंत्रीय विविधता गंभीर खतरे का सामना कर रही है।
- चतुर्थ, सीमित संसाधनों के साथ अधिकतम प्रभाव के लिए उन देशों पर अधिकतम निर्भर रहना पड़ेगा जो विविधता एवं स्थानीयता में समृद्ध हैं।

जैव-विविधता का ह्रास (Degradation of Bio-Diversity)

वर्तमान में संपूर्ण जैव-विविधता गंभीर संकट के दौर से गुजर रही है। स्थानिक पक्षियों की 2000 से अधिक प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं। IUCN की रेड लिस्ट (2004) में पिछले 500 वर्षों में कुल 784 प्रजातियों (338 कशेरुकी, 359 अकशेरुकी और 87 पौधों सहित) के विलुप्त होने का उल्लेख किया गया है। हाल ही में विलुप्त होने वाली प्रजातियों के कुछ उदाहरणों में डोडो (मॉरिशस), कागा (अफ्रीका), थाइलासीन (ऑस्ट्रेलिया), स्टेलर सी काउ (रूस) और बाघ की तीन उपप्रजातियाँ (बाली, जावा, कैस्पियन) शामिल हैं। स्मरणीय है कि विगत कुछ वर्षों में ही 28 प्रजातियाँ विलुप्त हो गयीं तथा बहुत सी विलुप्ति की कगार पर खड़ी हैं।

जैव-विविधता ह्रास के कारण

जीवों का विलोपन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। वास्तव में पृथ्वी पर रहने वाली अधिकांश प्रजातियाँ अब विलुप्त हो चुकी हैं। उनका विलोपन 'प्राकृतिक' रूप से किसी कारणवश हो चुका है। सम्भवत: वे अपने जैविक या भौतिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के साथ सामंजस्य बैठाने में सफल नहीं हो सके या वे किसी आपदा के शिकार हो गए। प्रजातियों के विलोपन की दर मानव वैज्ञानिक काल में समान नहीं रही। भू-वैज्ञानिक इतिहास के अधिकांश काल में विलोपन की घटनाएँ मंद ही रहीं, परंतु उनके बीच-बीच में कुछ ऐसे काल आए, जिनमें विलोपन की गतिविधियाँ एकदम से बढ़ गईं।

ऐसी 6 आपदाकारी घटनाओं के प्रमाण मिलते हैं, जिनमें व्यापक सामूहिक विलोपन हुआ। सबसे भयंकर सामूहिक विलोपन लगभग 250 मिलियन वर्ष पूर्व घटित हुआ, जब लगभग 96 प्रतिशत समुद्री प्रजातियाँ विलुप्त हो गईं।

दूसरी घटना 65 मिलियन वर्ष पूर्व घटित हुई, जिसमें अनेक कशेरुकी प्रजातियाँ विलुप्त हो गईं। इसी में सरीसृप वर्ग के डायनासोरिया और टेरोसॉरिया भी शामिल थे।

आधुनिक काल में मानव इस विलोपन की घटना को प्रेरित करने वाला मुख्य कारक है। विगत 200 वर्षों के दौरान विश्व की लगभग 100 स्तनपायी प्रजातियाँ, 160 पक्षी प्रजातियाँ और कई अन्य प्रजातियाँ मानवीय कारकों से विलुप्त हुईं।

पाषाणयुगीन मानव ने बड़े प्राणियों एवं वनस्पतियों को अनेक स्थानों पर अंधाधुन्ध शिकार द्वारा काफी क्षति पहुँचायी। विगत दस से पचास हजार वर्षों के बीच मेडागास्कर, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, तस्मानिया, हवाई द्वीप समूह, उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका आदि में, मानव बसाव तथा उसके क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में प्रजातियों का विलोपन हुआ। यह एक निर्विवाद सत्य है कि मानव ने अपनी संख्या और असंयत-असम्पोषणीय गतिविधियों के द्वारा पृथ्वी पर जैव विविधता की गुणवत्ता एवं परिणाम का चिंतनीय रूप से ह्रास किया है।

जैव-विविधता क्षरण के विभिन्न कारण हैं, जिनमें आवास विनाश, आवास विखण्डन, पर्यावरण प्रदूषण, विदेशी मूल के पौधों का आक्रमण, अतिशोषण, वन्यजीवों का शिकार, वन विनाश आदि हैं। इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है-

आवास विनाश तथा आवास विखण्डन:- आधुनिक औद्योगिक तथा वैज्ञानिक युग में मानव ने अपने अतार्किक क्रियाकलापों से जैविक आवासों को गहरा आघात पहुँचाया है। आवास की क्षति वर्तमान में अकशेरुकी जीवों की विलुप्ति का एक प्रमुख कारण है। बहुत से देशों में विशेषकर द्वीपों पर जब मानव जनसंख्या घनत्व में वृद्धि होती है, तो अधिकतर प्राकृतिक आवास नष्ट हो जाते हैं। विश्व के 61 में से 41 प्राचीन उष्णकटिबंधीय देशों में 50 प्रतिशत से ज्यादा वन्य जीवों के आवास नष्ट हो चुके हैं। ज्यादातर स्थितियों में आवास विनाश के प्रमुख कारक औद्योगिक तथा वाणिज्यिक गतिविधियाँ हैं, जिनका संबंध वैश्विक अर्थव्यवस्था; जैसे- खनन, पशुपालन, कृषि, वानिकी, बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं की स्थापना आदि से है। आवास विखण्डन वह प्रक्रिया है, जिसमें एक विशाल क्षेत्र का आवासीय क्षेत्रफल कम हो जाता है और प्राय: वह दो या अधिक टुकड़ों में बंट जाता है। जब आवास नष्ट हो जाता है, तो टुकड़े बहुधा एक-दूसरे से अलग-अलग क्षरित अवस्था में प्रकट होते हैं। आवास विखण्डन प्रजातियों के विस्तार तथा स्थापना को सीमित कर देता है, जिससे जैव-विविधता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

पर्यावरण प्रदूषण:- जैव-विविधता के क्षरण में पर्यावरणीय प्रदूषण भी एक महत्त्वपूर्ण कारक है। पेस्टीसाइड प्रदूषक के कारण मृदा के सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों तथा जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है। इसमें अतिरिक्त वर्षा जल के बहाव से जब पेस्टीसाइड जल स्रोतों में पहुँचते हैं, तो वहाँ भी सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों तथा जंतुओं के विनाश का कारण बनते हैं। परिणामस्वरूप, जैव-विविधता का क्षय होता है। पेस्टीसाइड डाईक्लोरो डाईफिनाइल ट्राईक्लोरोईथेन (DDT) पक्षियों की घटती आबादी का एक प्रमुख कारण है। DDT खाद्य शृंखला के माध्यम से पक्षियों के शरीर में पहुँचता है, जहाँ वह एस्ट्रोजेन नामक हॉर्मोन की गतिविधि को प्रभावित करता है, जिससे अण्डे की खोल कमजोर हो जाती है परिणामस्वरूप, अण्डा समय से पहले फूट जाता है जिससे भ्रूण की मृत्यु हो जाती है। औद्योगिक अपशिष्टों से भारी धातु (Heavy Metals) और सिंचित कृषि के कारण लवणीकरण (Salinisation) उनके जीवन और विकास के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ पैदा करते हैं। अम्ल वर्षा (Acid Rain) ने यूरोप में वनों को नष्ट किया है। समुद्री प्रदूषण से मत्स्य संसाधनों पर पड़ने वाले विनाशकारी प्रभावों के बारे में भी अक्सर सुनने को मिलता है।

बाह्य जातियों की प्रविष्टि

बाह्य जातियों की प्रविष्टि चाहे आकस्मिक की गई हो या जानबूझकर या फिर दोनों ही प्रकार से, यह सब किसी क्षेत्र की क्षेत्रीय जैव-विविधता के लोप होने का प्रमुख कारण बनती है। प्रविष्टित जाति (Introduced Species) श्रेष्ठ प्रतिद्वंदी होने के कारण मौलिक जातियों (Original species) को नुकसान पहुँचाते हुए स्वयं तीव्र गति से स्थापित हो जाती है। इन अचानक बदलते हुए दबावों के कारण मूल जातियाँ उस क्षेत्र से धीरे-धीरे समाप्त होने लगती हैं। इसके बहुत से उदाहरण हैं, जैसे-डोडो हिंद महासागर के एक छोटे से द्वीप मॉरिशस (Mauritius) में रहता था, डोडो में दो विशिष्टताएँ थीं जो अंतत: उसके सर्वनाश का कारण बनी, उसे मनुष्यों का कोई भय नहीं था और इसलिए वह आसानी से मारा जाता था, दूसरा वह उड़ भी नहीं सकता था, अत: वह जमीन पर अण्डे देता था। हिन्द महासागर के इस द्वीप पर सुअरों की प्रविष्टि के बाद उन्होंने उनके अण्डों का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 1681 तक डोडो प्रजाति के पक्षी विलुप्त हो गए। डोडो के विलोपन की कहानी को इस द्वीप पर एक नई प्रजाति सुअर प्रविष्टि और आवासी परिस्थिति के परिवर्तन के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है। किसी पारिस्थितिक तंत्र; जैसे- द्वीप में आवास का प्रकार और प्रत्येक आवास का क्षेत्रफल दोनों ही भौतिक रूप से सीमित होते हैं। इस प्रकार के दबाव के परिणामस्वरूप स्थानीय प्राणी की परभक्षियों और प्रतिद्वंदियों के प्रति अनुकूलन की क्षमता अक्सर कम ही रहती है।

प्राकृतिक आपदाएँ

प्राकृतिक आपदाएँ; जैसे- बाढ़, सूखा, गर्मी, महामारी इत्यादि के कारण भी तेजी से जैव-विविधता का क्षरण हो रहा है। इन प्राकृतिक आपदाओं के कारण उन तमाम तरह के जीवों के नष्ट होने का खतरा बढ़ जाता है, जो अपने को इन विषम परिस्थितियों को झेलने में सक्षम नहीं हो पाते। चार्ल्स डार्विन के अनुसार सिर्फ वे ही जीव जिन्दा रह सकते हैं, जो विषम परिस्थितियों में जीवित रहने की क्षमता रखते हैं।

जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसके कारण भी जैव-विविधता क्षरण को बढ़ावा मिलता है। पिछले करीब 50 वर्षों में जंगलों की अंधाधुंध कटाई, खनिज तेलों तथा कोयले का उपयोग, उद्योगों तथा बिजली उत्पादन बहुत तेजी से बढ़ा है और आधुनिक खेती में नाइट्रोजन उर्वरकों के उपयोग से और धान की उन्नत खेती से व CFC गैसों के उत्सर्जन तथा कार्बनिक अवशेषों के जलाने से वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों, जैसे-कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि का उत्सर्जन तेजी से हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप ये गैसें धरातल से परावर्तित होकर जाने वाली नाइट्रस इन्फ्रारेड किरणों को अवशोषित करके वायुमंडलीय तापक्रम को बढ़ा रही हैं। ऐसे में वनस्पतियों, प्राणियों के क्षरण की संभावना बढ़ सकती है, जो अपने को परिवर्तित वातावरण में अनुकूलित नहीं कर पाते। कुछ जंतु गर्मी बढ़ने के कारण अन्य स्थान या जमीन के नीचे चले जाते हैं, परंतु ऐसे जीव जिनमें स्थानांतरण की क्षमता या लक्षण नहीं होते, ज्यादा प्रभावित हो सकते हैं। ऐसे पौधे एवं प्राणी, जिनको एक विशेष तापक्रम की आवश्यकता होती है, वायुमंडल का तापमान बढ़ने से उनके प्रजनन एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और उनके उत्पादन में भारी कमी हो सकती है। उदाहरण के लिए, सर्दी

में उगायी जाने वाली विभिन्न फसलों: जैसे- गेहूँ, आलू, सरसों, सेब आदि, जिनको कम तापक्रम की आवश्यकता होती है या घड़ियाल, जिसमें लिंग निर्धारण तापक्रम की वजह से होता है, तापक्रम बढ़ने से ज्यादा प्रभावित होंगे तथा उनके क्षरण की संभावना अधिक रहेगी।

तापक्रम बढ़ने से समुद्री तटों के जलमग्न होने के कारण वहाँ पाये जाने वाले उन तमाम तरह के जीवों का विनाश हो सकता है, जो लवणों का सेवन करने की क्षमता नहीं रखते। इसी प्रकार, समतापीय जलवायु वाले क्षेत्रों में भी तापक्रम के कारण फसलों के दाने कम या नहीं बनते हैं, जिससे खेती करना असंभव हो सकता है।

जनसंख्या वृद्धि तथा शहरीकरण

अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि जैव-विविधता के क्षरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वर्तमान में संपूर्ण विश्व की जनसंख्या लगभग 7 अरब हो चुकी है और इसमें 8 से 9 करोड़ हर वर्ष वृद्धि हो जाती है। निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या का भार प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ना स्वाभाविक है। जरूरत से ज्यादा आबादी होने पर प्राकृतिक संसाधनों की कमी पड़ने लगती है। फलत: मानव अति उत्पादन के लिए प्रेरित होता है तथा कृषि के लिए वन नाशन, उर्वरकों का अति उपयोग आदि से प्राकृतिक संसाधनों को विरूपित करता है। जनसंख्या बढ़ने से कृषि योग्य भूमि का एक बहुत बड़ा हिस्सा शहरों के निर्माण में उपयोग किया जाने लगा है तथा उद्योगों के विकास के लिए भी कृषि योग्य भूमि का उपयोग होने के कारण कृषि भूमि पर पैदावार बढ़ाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है। इसके लिए ज्यादा उर्वरक, कीटनाशक तथा अन्य रसायनों का उपयोग बढ़ रहा है जिसके कारण पर्यावरण का प्रदूषित होना निश्चित है। इस तरह पर्यावरण की कीमत पर कृषि का विकास न केवल अनुचित है, अपितु खतरनाक भी है। आधुनिक मानव द्वारा अपनी ऊर्जा जरूरतों को पूर्ण करने के लिए बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण किया गया है। इन बाँधों के निर्माण से स्थानीय जैव-विविधता बुरी तरह प्रभावित हुई है।

अवैध शिकार

जन्तुओं का शिकार आमतौर से दांत, सींग, खाल, कस्तूरी आदि के लिए किया जाता है। अंधाधुंध शिकार के कारण जानवरों की बहुत सी प्रजातियाँ लुप्तप्राय जन्तुओं की श्रेणी में पहुँच चुकी हैं। शिकार के कारण अफ्रीका महाद्वीप में पाए जाने वाले हाथियों की संख्या में भारी कमी आयी है। एक अनुमान के मुताबिक, 1980 के दशक में अफ्रीकी हाथियों का शिकार 100000 प्रतिवर्ष हो रहा था। यही कारण है कि अफ्रीकी हाथी अपनी कुल संख्या का 80% शिकार के कारण नष्ट हो चुके हैं। इसी प्रकार कश्मीरी हंगुल, लाल पांडा तथा असम के गैंडे अवैध शिकार के कारण विलुप्ति की कगार पर पहुँच गए हैं। बाघ, तेन्दुआ, चिंकारा, कृष्ण मृग तथा बारहसिंगा जैसे जंगली जीवों को शिकार के कारण गहरा आघात लगा है।

प्राकृतिक कारण

प्राकृतिक आपदाएँ भी जैव-विविधता को वृहद् स्तर पर क्षति पहुँचाती हैं। सुनामी, भूकम्प, ज्वालामुखी, बाढ़ व भू-स्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाएँ स्थानीय जैव-विविधता के प्राकृतिक आवासों के विखण्डन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

संकटग्रस्त अथवा संकटापन्न प्रजातियाँ

संकटग्रस्त प्रजातियों से तात्पर्य ऐसी प्रजातियों से है जो विलुप्त होने के भारी खतरे का सामना कर रही हैं अर्थात् यदि उनके संरक्षण के लिए तत्काल कारगर कदम नहीं उठाये गए, तो ये शीघ्र ही विलुप्त हो सकती हैं। इस संदर्भ में 'इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर' (IUCN) द्वारा किए गए वर्गीकरण को देखा जा सकता है।

IUCN की रेड डाटा बुक (रेड लिस्ट) में प्रजातियों को उनकी स्थिति के अनुसार कुल नौ श्रेणियों में रखा गया है। स्मरणीय है कि यह आकलन प्रजातियों की संख्या में गिरावट, भौगोलिक क्षेत्र में उनकी स्थिति के आधार पर किया जाता है।

IUCN द्वारा जैव-विविधता के अंतर्गत संकटग्रस्त प्रजातियों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया गया है:-

विलुप्त (Extinct)

ऐसी प्रजातियाँ, जिनका एक भी जीवित सदस्य शेष नहीं है। यह विलोपन किसी प्राकृतिक निवास अथवा संरक्षित क्षेत्र में हो सकता है।

वन्य विलुप्त (Extinct in the wild-EW)

वह प्रजाति, जो वनों से पूर्णत: विलुप्त हो चुकी है और इसके बचे हुए सदस्य केवल चिड़ियाघरों या अपने मूल स्थान से अलग किसी कृत्रिम निवास स्थान पर ही जीवित हैं।

गंभीर रूप से संकटग्रस्त (Critically Endangered-CR)

इसका आशय उस अवस्था से है, जिसमें पिछले 10 वर्षों में 90% वन्य जीवों की संख्या कम हो जाती है, वयस्कों की संख्या 50 से कम रह जाती है तथा आने वाले 10 वर्षों अथवा 3 पीढ़ियों में प्रजाति के लुप्त होने की संभावना अधिक प्रबल होती है।

संकटग्रस्त (Endangered- EN)

इसके अंतर्गत प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा बना हुआ होता है। इस स्थिति में 70 प्रतिशत से कम जनसंख्या और 250 से कम वयस्क रह जाते हैं। इसके साथ ही 20 वर्षों में 20 प्रतिशत प्रजातियों के विलुप्त होने की आशंका हो।

सुभेद्य (Vulnerable- VU)

इसके अंतर्गत प्रजातियों की वनों में संकटग्रस्त हो जाने की संभावना हो, प्रजातियों की संख्या में 10 वर्षों में 50 प्रतिशत से अधिक कमी दर्ज की गयी हो। इसके साथ ही 1000 या उससे कम वयस्क सदस्यों की संख्या शेष रह गयी हो।

निकट संकट (Near Threatened- NT)

इस वर्ग के तहत यह मूल्यांकन किया गया है कि प्रजातियों के निकट भविष्य में संकटग्रस्त हो जाने का खतरा है।

न्यूनतम चिंता (Least Concern- LC)

यह वर्ग विस्तृत रूप से तथा घना फैला हुआ होता है। प्रजातियों को बहुत कम खतरा हो अथवा भविष्य में संकटग्रस्त होने का खतरा न हो।

आँकड़ों का अभाव (Data Deficient- DD)

किसी आंकलन के लिए आँकड़ों का अभाव होता है। अत: प्रजातियों की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन नहीं किया जा सका है।

अनाकलित (Not Evaluated- NE)

IUCN के मानक के आधार पर आकलन नहीं किया गया है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

- भारत में लगभग 45000 पौधों की प्रजातियां पाई गयी हैं।
- भारत में कुल जैवमंडल निचयों (Biosphare Reserve) की संख्या 18 है जिनमें से 11 को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है।
- वर्ष 2016 में UNESCO द्वारा कंचनजंगा बायोस्फीयर रिजर्व को विश्व विरासत की स्थलों सूची में शामिल किया गया। यह भारत का पहला 'मिश्रित धरोहर' स्थल बन गया है।
- भारत में 15 कृषि जलवायविक प्रदेश हैं।
- पश्चिमी घाट भारत का सर्वाधिक जैव-विविधता संपन्न क्षेत्र है।
- भारत के पश्चिमी घाट के क्षेत्र में सदाबहार वन से लेकर शुष्क पर्णपाती वन तक पाए जाते हैं।
- कीटों की सबसे अधिक प्रजातियां मरूस्थलीय प्रदेशों में पायी जाती हैं।
- ब्लैक बक भारतीय मरूस्थल की एक विशिष्ट प्रजाति है।
- भारतीय मरूस्थल में चिंकारा, मरूस्थलीय लोमड़ी, फ्लेमिंगो, ग्रेट इंडियन बस्टर्ड आदि जीव स्थानिक विशिष्टता को प्रदर्शित करते हैं।
- जबकि पश्चिमी घाट में फ्लाइंग गिलहरी, लायन टेल्ड मेकॉक, नीलगिरी लंगूर, टाइगर, एशियाई हाथी तथा मालाबारी हॉर्नबिल विशिष्ट स्थानिक प्रजातियां हैं।
- इसी प्रकार पूर्वी घाट में सुन्दरवन व मैंग्रोव के रूप में वनस्पतियों अथवा पादपों का विस्तृत क्षेत्र है।
- गंगा नदी के वृहद् प्रवाह तंत्र में गंगा डॉल्फिन व घड़ियालों की विशिष्ट प्रजातियां आश्रय पाती हैं। स्मरणीय है कि गंगा डॉल्फिन को भारत का राष्ट्रीय जलीय जीव घोषित किया गया है।
- भारत के कुल हॉटस्पॉट क्षेत्रों में पश्चिमी घाट क्षेत्र (64.95%), हिमालयी क्षेत्र (44.3%) इण्डो-बर्मा (5.13%) तथा सुण्डालैंड हॉटस्पॉट (1.28%) क्षेत्र आते हैं।
- भारत में विश्व की लगभग 8.1% जैव विविधता पाई जाती है।
- भारत में विश्व की 1200 पक्षियों की प्रजातियां पाई जाती हैं, इस दृष्टि से भारत का विश्व में 8वाँ स्थान है।
- सरीसृप अर्थात् रेंगने वाले जीवों के संबंध में भारत का विश्व में 5वाँ स्थान है।
- एक अनुमान के मुताबिक भारत में 18% पौधे यहाँ के स्थानीय हैं, जो विश्व के अन्य किसी भी क्षेत्र में नहीं पाए जाते हैं।
- भारत में छिपकलियों की 153 प्रजातियाँ अब तक चिन्हित की जा चुकी हैं।
- हिमालय के गिरिपाद क्षेत्र में साल, बर्च, फर्न, पाइन आदि के पेड़ तथा सांबर, भालू, लाल पांडा, बंदर, लकड़बग्घा, गोल्डेन लंगूर आदि पाये जाते हैं।
- मैन एण्ड बायोस्फीयर ने जीवमंडल के अंतर्गत ही क्षेत्रीय विभाजन 1976 में सुझाया था।
- बायोस्फीयर रिजर्व के अंतर्गत कोर क्षेत्र में किसी भी प्रकार की आर्थिक व सांस्कृतिक क्रिया की अनुमति नहीं होती।
- बफर क्षेत्र में पर्यावरणीय शोध, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि की अनुमति होती है।
- जबकि संक्रमण क्षेत्र में पर्यटन की अनुमति होती है।

अध्याय 7

जैव-विविधता का संरक्षण
Conservation of Bio-Diversity

पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ अरबों वर्ष पूर्व हुआ। विभिन्न युगों में पृथ्वी पर नयी प्रजाति के वनस्पतियों तथा जीवों का क्रमिक उद्‌भव हुआ। आज जो जैव-विविधता हम देखते हैं वह विकास के इतिहास के करीब 3.5 बिलियन से अधिक वर्षों का परिणाम है। जैव-विविधता जीवन का एक तानाबाना है जिस पर हम पूरी तरह से निर्भर रहते हैं। मानव अपने भोजन, औद्योगिक उत्पादों, ऊर्जा, औषधियों आदि आवश्यकताओं की पूर्ति जैविक संसाधनों से करता है, परन्तु मानव की कभी पूर्ण न होने वाली इन्हीं आवश्यकताओं ने सम्पूर्ण जैव विविधता को विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। मानव जनित कारकों ने जीवों व वनस्पतियों की अनेक प्रजातियों को विलोपित कर दिया है, जबकि अन्य कई प्रजातियाँ गंभीर संकट के दौर से गुजर रही हैं। हम जानते हैं कि जैव-विविधता पृथ्वी पर सम्पूर्ण जीवन तंत्र का अपरिहार्य घटक है अर्थात् इसके बिना जीवन का बने रहना सम्भव नहीं है। अत: जैविक सम्पदा का विवेकपूर्ण उपयोग तथा संरक्षण किए जाने की महती आवश्यकता है।

जैव-विविधता के संरक्षण का आशय प्राकृतिक संसाधनों के योजनाबद्ध प्रबंधन से है जिससे न केवल प्राकृतिक संतुलन को स्थापित किया जा सकता है, अपितु जैव विविधता को भी बनाए रखा जा सकता है। इस संदर्भ में स्थानिक तथा जैविक स्तर पर संरक्षण से संबंधित क्रियाविधियों को क्रियान्वित करना है। जैव-विविधता का संरक्षण एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है।

जैव-विविधता को सुनिश्चित करने के लिए वर्ष 1992 में ब्राजील के रियो-डि-जेनेरियो शहर में सम्मेलन आयोजित किया गया। इस जैव-विविधता संबंधी सम्मेलन (Convention on Biodiversity-CBD) को प्रथम पृथ्वी सम्मेलन के नाम से जाना गया।

सी.बी.डी. का उद्देश्य

सी.बी.डी के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए-

- जैव-विविधता का संरक्षण।
- जैव-विविधता का पोषणीय उपयोग।
- आनुवांशिक संसाधनों के इस्तेमाल से होने वाले लाभों की न्यायोचित एवं समान हिस्सेदारी सुनिश्चित करना।

संरक्षण की विधियाँ [Method of Conservation]

जैवविविधता के संरक्षण के लिए दो विधियाँ समग्र रूप से प्रयोग की जा रही हैं-

- स्व-स्थाने संरक्षण [In-situ Conservation]
- बाह्य-स्थाने संरक्षण [Ex-situ Conservation]

स्व-स्थाने संरक्षण (In-Situ Conservation)

इसके अंतर्गत पौधों एवं प्राणियों को उनके प्राकृतिक वास स्थान अथवा सुरक्षित क्षेत्रों में संरक्षित किया जाता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत सभी घटक प्रजातियों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार की जाती हैं। हानिकारक कारकों का उपचार करके प्रजातियों के लिए स्वस्थ पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण किया जाता है। इसे पौधों एवं पशुओं के गहन संरक्षण से प्राप्त किया जा सकता है। संरक्षण की इस प्रक्रिया के तहत् विभिन्न क्रियाविधियों को शामिल किया जाता है, जो इस प्रकार हैं-

संरक्षित क्षेत्र (Protected Areas)

IUCN के अनुसार, जैव-विविधता हेतु संरक्षित क्षेत्र भौगोलिक रूप से चिन्हित किए गए ऐसे क्षेत्र हैं, जिन्हें कानूनी अथवा किसी अन्य प्रभावी तरीके से मान्यता दी गई है। जिसके जरिए पारितंत्र की सेवाओं तथा उसके सांस्कृतिक मूल्यों को वैधानिक एवं अन्य उपायों से लंबी अवधि के लिए संरक्षित किया जाता है। स्मरणीय है कि संरक्षित क्षेत्र का विकास तब किया जाता है जब कोई प्रजाति बाह्य परजीवियों, विदेशज प्रजातियों के आगमन अथवा मानव की अवांद्दित गतिविधियों से संकटापन्न हो जाती है।

परिरक्षण प्लॉट (Preservation Plots)

ये छोटे आकार के संरक्षित प्राकृतिक क्षेत्र होते हैं, जिनका उद्देश्य किसी विशेष क्षेत्र के पौधों एवं जीवों का संरक्षण करना होता है।

स्व-स्थाने संरक्षण के अंतर्गत वन्यजीव अभ्यारण्य, राष्ट्रीय उद्यान, बायोस्फियर रिजर्व तथा पवित्र उपवन आदि आते हैं।

राष्ट्रीय पार्क (National Park)

राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के अंतर्गत निश्चित किया गया ऐसा क्षेत्र है, जहाँ समृद्ध जैव विविधता वाले पारिस्थितिक तंत्र मौजूद हैं। यह पर्याप्त पारिस्थितिकी, वनस्पतियों [Flora], जीव-जन्तुओं (Fauna), भू-आकृतियों तथा जलीय महत्ता वाला क्षेत्र होता है और इसे भावी पीढ़ियों के लिए राष्ट्रीय धरोहर के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। यहाँ मानव बसाव की अनुमति नहीं होती तथा पशुचारण भी प्रतिबंधित होता है। यहाँ मानव के प्रवेश की अनुमति है, परन्तु किसी भी प्रकार के हथियार को ले जाना प्रतिबंधित है। वन्यजीवों का शिकार अथवा मत्स्यन को भी प्रतिबंधित किया गया है। यहाँ तक कि पौधों को संग्रहित करना तथा उन्हें क्षति पहुँचाना भी निषिद्ध है। वर्तमान में भारत में कुल 103 राष्ट्रीय उद्यान हैं। स्मरणीय है कि जिम कॉर्बेट को भारत का पहला राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया।

वन्यजीव अभ्यारण्य (Wildlife Sanctuaries)

वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के तहत वन्यजीव अभ्यारण्यों का गठन किसी एक प्रजाति अथवा कुछ विशिष्ट प्रजातियों के संरक्षण के लिए किया जाता है अर्थात् ये 'विशिष्ट प्रजाति आधारित संरक्षित क्षेत्र' होते हैं। इसका उद्देश्य वन्यजीवों अथवा उनके पर्यावरण का संरक्षण, प्रजनन अथवा विकास होता है। इस क्षेत्र का पर्याप्त पारिस्थितिकी, वानस्पतिक, जीवीय अथवा भू-आकृतिकयों के लिए महत्त्व होता है।

राष्ट्रीय पार्क की अपेक्षा यहाँ रहने वाले व्यक्तियों को कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। जैसे- अभ्यारण्य में पशु चारण का अधिकार होता है, परन्तु वन्य संरक्षक उस पर नियंत्रण लगा सकता है या उसे पूर्ण वर्जित कर सकता है। सन् 2002 से वन्य जीव अभ्यारण्यों से वन्य जीवों तथा वन्य उत्पादों को ले जाने की अनुमति है।

भारत में वर्तमान में 544 अभ्यारण्य हैं।

भारत के प्रमुख वन्यजीव अभ्यारण्य (WLS)

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
उत्तराखण्ड	– नंदौर – केदारनाथ – मसूरी – अस्कोट – सोना नदी	– केदारनाथ वन्यजीव अभ्यारण्य 1972 में स्थापित किया गया था। – यहाँ पर स्नो लैपर्ड, ब्लैक बियर, सांभर आदि जीव पाए जाते हैं। – अस्कोट मृग अभ्यारण्य की स्थापना 1986 में हुई थी। अस्कोट मृग अभ्यारण मुख्य रूप से कस्तूरी मृग के लिए जाना जाता है।
हिमाचल-प्रदेश	– रेणुका (2013) – पोंग लेक – चन्द्रताल – तिर्थल – गमगुल सियोबेही – मजाथल	– रेणुका वन्यजीव अभ्यारण्य में तेंदुआ, सांभर, पाम सिविट, नीलकंठ पक्षी व हिरण आदि पाए जाते हैं। – पोंग लेक वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना 1954 में हुई थी।
जम्मू-कश्मीर	– लाचीपोरा – त्रिकुटा – चांग थंग शीत मरुस्थल – होकेरसर – जरसोटा – सुरिनसर-मानसर	– लाचीपोरा वन्यजीव अभ्यारण की स्थापना 1987 ई. में की गयी थी। यहाँ अल्पाइन, बर्च आदि वृक्ष तथा जंगली बकरी प्रचुर-मात्रा में देखे जा सकते हैं। – चांगथंग का भौगोलिक विस्तार कश्मीर से लेकर तिब्बत तक है। चांगथंग में अनेक वनस्पतियाँ तथा वन्य जीव पाए जाते हैं। यहाँ विशेष रूप में किआंग नामक जंगली गधे को संरक्षण प्राप्त है।
पंजाब	– झज्जर बचोली – नानगल – हरिके झील	
चंडीगढ़	– सुखना झील – सिटी बर्ड	– सुखना झील के आस-पास स्थित क्षेत्र को 1998 में वन्यजीव अभ्यारण्य के रूप में विकसित किया गया है। यह लगभग 2610 हेक्टेयर में फैला हुआ है।

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
	– मोरनी पहाड़ियाँ	
	– चिलचिला	– चिलचिला वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना 1987 में की गयी थी। यह हरियाणा के कुरूक्षेत्र जिले में स्थित है।
हरियाणा	– भिंडवास	– भिंडवास वन्य जीव अभ्यारण्य की स्थापना 1986 ई. में हुई थी। यह एक पक्षी अभ्यारण्य है।
	– शिकारगढ़	
	– नाहड	
	– कुंभलगढ़	– कुंभलगढ़ वन्यजीव अभ्यारण्य-रीछ, भेड़ियों एवं जंगली सुअरों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर भेड़ियों के प्रजनन के लिए एक केन्द्र भी स्थापित किया गया है।
	– नाहरगढ़	
	– ताल छापर	– ताल छापर वन्यजीव अभ्यारण्य काले हिरणों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष शीतकाल में यहाँ कुरजा पक्षी तथा क्रोमन क्रेन शरण लेने आते हैं।
	– रामगढ़	– रामगढ़ बाघ, चीतल, रीछ, चिंकारा, नीलगाय तथा गीदड़ आदि के लिए जाना जाता है।
राजस्थान	– माउण्ट आबू	– माउण्ट आबू वन्य जीव अभ्यारण्य की स्थापना 1960 ई. में की गयी थी। यहाँ मुख्य रूप से तेंदुए, स्लोथ बियर, सांभर, चिंकारा और लंगूर पाए जाते हैं।
	– सीतामाता	
	– वन विहार	
	– रामसागर	
	– सज्जनगढ़	

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
मध्य प्रदेश	– नौरादेही	– नौरादेही वन्य जीव अभ्यारण्य सागर जिले में स्थित है। यह मध्य प्रदेश का सबसे बड़ा वन्यजीव अभ्यारण्य है। इसकी स्थापना 1994 में हुई थी।
	– घाटीगाँव	
	– पंचमढ़ी	– पंचमढ़ी अभ्यारण्य होशंगाबाद जिले में स्थित है। यह हिरण, चीतल, सांभर, गौर, तेंदुआ, चिंकारा आदि के लिए प्रसिद्ध है।
	– सरदारपुर	
	– सिंगौरी	
	– वीरांगना दुर्गावती	
	– रातापानी	
	– केन घड़ियाल	– केन अभ्यारण्य घड़ियाल तथा मगरमच्छ के लिए जाना जाता है।
	– गाँधी सागर	– गाँधी सागर अभ्यारण्य मध्य प्रदेश के नीमच और मंदसौर जिले की उत्तरी सीमा पर स्थित है। इसे 1994 में वन्यजीव अभ्यारण्य घोषित किया गया था। यहाँ मुख्य रूप से सांभर, चीतल, तेन्दुआ तथा विविध प्रकार के पक्षी आश्रय पाते हैं।
	– करेरा	
	– खियोनी	
	– कून्नो	
	– नरसिंहगढ़	
	– बोरी	
	– संजय दूबरी	
उत्तर प्रदेश	– बखिरा	– बखिरा उत्तर प्रदेश के संत कबीर नगर में स्थित एक पक्षी अभ्यारण्य है। यहाँ सारस क्रेन, वाटरहेन, हिवीसिल, कोचार्ड आदि पक्षियों की प्रजामियाँ देखी जा सकती हैं।
	– चन्द्रप्रभा	– चन्द्रप्रभा वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना 1957ई. में की गयी थी। यह वाराणसी के निकट चंदौली जिले में स्थित है। यहाँ तेंदुआ, काला हिरण, चीतल, जंगली सुअर आदि देखे जा सकते हैं।
	– महावीर स्वामी	
	– किशनपुर	
	– कैमूर	
	– नवाबगंज	– नवाबगंज पक्षी अभ्यारण्य लखनऊ तथा कानपुर के मध्य में स्थित है। यह स्थानीय पक्षियों के साथ-साथ साइबेरियन पक्षियों के आश्रय स्थल के रूप में जाना जाता है।
	– पार्वती	
	– समसपुर	
	– ओखला	
	– पटना	

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
बिहार	– वाल्मीकि	– वाल्मीकि वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना 1978 में की गयी थी। यहाँ पर तेंदुआ, चीतल, काला हिरण तथा फिशिंग कैट्स आदि वन्य जीव पाये जाते हैं।
	– भीमबांध	
	– कुशेस्वर	
	– नक्ती डैम	
	– विक्रमशिला	
झारखंड	– डालमा	– डालमा वन्यजीव अभ्यारण्य मुख्य रूप से हाथियों के संरक्षण के लिए जाना जाता है।
	– हजारी बाग	– हजारी बाग वन्यजीव अभ्यारण्य सांभर, काकर (हिरण की एक प्रजाति) तथा चीतल आदि वन्यजीवों के लिए जाना जाता है।
	– कोडर्मा	
	– पलामू	– पलामू वन्य जीव अभ्यारण्य मेदिनी नगर जिले में स्थित है। यहाँ बाघ, हाथी, तेंदुआ, गौर, सांभर तथा चीतल आदि वन्य जीवों के लिए जाना जाता है। 1994 में इसे बाघ परियोजना के अंतर्गत शामिल कर लिया गया।
	– उधवा लेक	
	– गौतमबुद्ध	
	– पारसनाथ	
	– टोपचांची	
	– लावलोंग	
छत्तीसगढ़	– अचानकमार	– अचानकमार वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना 1975 में कि गई। यह वन्यजीव अभ्यारण्य 552 वर्ग किलोमीटर में फैला है। यहाँ बाघों की अधिकता है। अन्य जीवों में स्लोथ बियर, चार सींग वाले एंटीलोप, ब्लैक बक, चीतल आदि पाए जाते हैं।
	– उदयन्ती	– उदयन्ती वन्यजीव अभ्यारण्य मुख्य रूप से जंगली भैंसों के लिए प्रसिद्ध है।
	– तमोरपिंगला	– तमोरपिंगला वन्य जीव अभ्यारण्य जंगली भालू के लिए जाना जाता है।
	– भैरमगढ़	
	– सीताबदी	
	– पामेड़	
महाराष्ट्र	– कल्सुबाई	– 1986 ई. में स्थापित कल्सुबाई वन्य जीव अभ्यारण्य- मोंगोज, लकड़बग्घा, सांभर आदि वन्य जीवों के लिए प्रसिद्ध है।
	– कोयना	– कोयना वन्यजीव अभ्यारण्य महाराष्ट्र के सबसे महत्त्वपूर्ण अभ्यारण्यों में से एक है। यहाँ पर पाए जाने वाले जीवों में भारतीय तेंदुआ, हिरण ब्लैक बियर आदि हैं।

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
	– जैकवाड़ी	
	– बोर	
	– करंज सोहल ब्लैक बक	
	– मेलघाट	
	– नवेगांव	
	– नरनाला	
	– नव नागझिरा	– नव नागझिरा वन्यजीव अभ्यारण्य अपनी समृद्ध जैव विविधता के लिए जाना जाता है। यहाँ बाघ, तेंदुआ, सांभर, भालू, जंगली कुत्ते, नीलगाय आदि देखे जा सकते हैं।
	– पेनगंगा	
	– थाणे क्रीक	
	– फलेमिंगो	
	– गंगेवाड़ी	
	– भीमाशंकर	– भीमाशंकर वन्यजीव अभ्यारण्य विशेष रूप से विशालकाय गिलहरी (3 फीट लंबी) के लिए प्रसिद्ध है।
	– ताड़ोबा अंधारी	
	– टाइगर रिज़र्व	– बोर अभ्यारण्य में चीता, सांभर, जंगली बिल्ली आदि जीव पाए जाते हैं। वर्ष 2014 में इसे देश 47 वां टाईगर रिज़र्व घोषित किया गया।
	– घोड़ाजारी	– घोड़ाजारी 31 जनवरी, 2018 को महाराष्ट्र सरकार द्वारा वन्यजीव अभ्यारण्य घोषित किया गया।
ओडिशा	– भितरकनिका	– भितरकनिका राष्ट्रीय उद्यान तथा वन्यजीव अभ्यारण्य दोनों है। यहाँ बड़ी तादात में मगमच्छ पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त मॉनिटर लिजर्ड, सांभर आदि जीव भी देखे जा सकते हैं।
	– सिमलीपाल	– सिमिलीपाल वन्यजीव अभ्यारण्य भारत के सबसे विशिष्ट अभ्यारण्यों में गिना जाता है क्योंकि यहाँ पर बाघ, हाथी, तेंदुआ, चीतल, भौंकने वाले हिरण, ब्लैक बियर, सांभर आदि भी देखे जा सकते हैं।
	– सतकोसिया	
	– नंदनकानन	
	– गहिरमाथा	
	– चिल्का	– चिल्का वन्यजीव अभ्यारण्य हजारों स्थानीय और प्रवासी पक्षियों के आश्रय के लिए जाना जाता है।
	– सुनाबेड़ा	
	– देबिगढ़	
	– कोट्टागढ़	

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
आंध्र-प्रदेश	– कोरिंगा	– कोरिंगा वन्यजीव अभ्यारण्य में मैंग्रोव की कुल 24 प्रजातियां पाई जाती हैं। यहाँ 94 प्रवासी पक्षियों की प्रजातियों के साथ कुल 266 प्रजातियां पाई जाती हैं।
	– नागार्जुन सागर	
	– कोल्लेरू	
	– नेल्लापट्टू	
	– पुलिकट	– पुलिकट एक पक्षी अभ्यारण्य है।
	– रोल्लापाडू	
	– कृष्णा	
	– श्रीलंकमल्लेश्वर	
	– पाखल	
कर्नाटक	– भद्रा	– भद्रा वन्यजीव अभ्यारण्य के साथ-साथ एक टाइगर रिजर्व भी है।
	– बांदीपुर	– दान्देली वन्यजीव अभ्यारण्य ब्लैक लैपर्ड (काला तेन्दुआ), गौर, हिरण, बाघ, काले भालू आदि वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास के लिए जाना जाता है।
	– सोमेश्वर	
	– दान्देली	
	– ब्रह्मगिरी	
	– सरावथी	
	– थिमलापुरा	
	– बिलिगिरिरंगा	– बिलिगिरिरंगा वन्यजीव अभ्यारण्य 'ब्लैकबक' के लिए प्रसिद्ध है।
	– मलाई महादेश्वरा	
	– तालकावेरी	
	– घाटप्रभा	
	– शेट्टीहल्ली	– शेट्टीहल्ली, तेलंगाना का महत्त्वपूर्ण जीव अभ्यारण्य है। यहाँ लकड़बग्घा, तेंदुआ, हाथी, काला हिरण आदि जीव पाए जाते हैं।
तेलंगाना	– श्रीशैलम	
	– प्राणहिता	
	– कवल	
	– मंजीर	
	– पाखल	– पाखल वन्य जीव अभ्यारण्य विशेषकर भालू, सांभर, चीतल व तेंदुआ आदि के लिए प्रसिद्ध है।
गोवा	– बोन्डला	

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
गुजरात	– गिरनार	– गिर वन्यजीव अभ्यारण्य एक राष्ट्रीय उद्यान भी है। यह एशियाई शेरों का एकमात्र प्राकृतिक निवास स्थान है। गिर को 1969 में वन्यजीव अभ्यारण्य घोषित किया गया था।
	– कच्छ का रण	– कच्छ का रण वन्यजीव अभ्यारण्य जंगली गधों के लिए विश्व प्रसिद्ध है।
	– गिर	
	– मिटियाल	
	– पोरबंदर	
	– वाइल्ड ऐस	
	– हिंगोलगढ़	
	– नाल सरोवर	
	– थोल लेक	
	– खिजाड़िया	
	– जेस्सोर	
तमिलनाडु	– सत्यमंगलम	
	– कोडाईकनाल	
	– नेल्लई	
	– प्वॉइंट कैलीमर	
	– मुदुमलाई	– मुदुमलाई वन्यजीव अभ्यारण्य में हाथी, चीता, तेंदुआ, सांभर, हिरण आदि को संरक्षण प्राप्त है।
	– वेल्लानाडु	
	– श्रीविल्लिपुथूर	– श्रीविल्लिपुथूर वन्यजीव अभ्यारण्य में हाथी, शेर की पूंछवाला बंदर, बार्किंग बियर, नीलगिरि ताहर आदि जीव पाए जाते हैं।
	– काबिनी	
केरल	– पेरियार	– पेरियार वन्यजीव अभ्यारण्य हिरण, हाथी, तेन्दुआ, सांभर, ब्लैकबियर, जंगली सूअर आदि के लिए प्रसिद्ध है। इसे सन् 1977 में टाइगर रिजर्व घोषित किया गया।
	– इडुक्की	– इडुक्की केरल का एक प्रमुख वन्यजीव अभ्यारण्य है। यहाँ बाघ, जंगली भैंस, ब्लैक बियर, जंगली सूअर, सांभर, लॉफिंग थ्रस तथा ब्लैक बुलबुल आदि विविध प्रकार के जीव-जन्तु देखे जा सकते हैं।
	– वायनाड	– वायनाड वन्यजीव अभ्यारण्य ब्लैक बियर, जंगली-सीवेट, हिरण, टाइगर आदि के लिए प्रसिद्ध है।
	– मालाबार	
	– परामि्बकुलम	– परामि्बकुलम वन्यजीव अभ्यारण्य के साथ-साथ टाइगर रिज़र्व है।
	– थलेक्कड़	
	– चिन्नार	

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
	– अर्लम – मंगलवनम् – पीचि वज्हनी – साइलेंट वैली	
पश्चिम बांगल	– बुक्सा – महानंदा – राम्नाबगच – चिंतामणि पक्षी विहार – रायगंज – सजनाखली – पश्चिमी सुन्दरवन	– बुक्सा वन्यजीव अभ्यारण्य के साथ-साथ टाइगर रिजर्व भी है। यहाँ सीवेट, गौर, इंडियन बोर, हाथी तथा विशेष रूप में बंगाल टाइगर पाए जाते हैं।
असम	– अमचांग – डीहिंग पटकाप – चक्रशिला – दीपोर बील – होलीगापर – नांबूर – सोनाय रूपाय	– अमचांग विशिष्ट प्रजातियों के जीवों के लिए जाना जाता है जो चीनी वज्रदेही, रीसस मकॉक, तेंदुए, बार्किंग डीयर, सफेट पीठ वाले गिद्ध, ग्रीन इंपीरियल कबूतर आदि के लिए जाना जाता है।
मिजोरम	– डम्पा (Dampa) – पौलरेंग – टावी – थोरांतलाग	
मणिपुर	– यांगोपोपकी लाकचाओ	– इस वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना सन् 1989 में की गयी थी।
सिक्किम	– फामबोंग – कीतम	

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्रणिजात [Fauna]
	– शींगबा – पांगोलखा	
नागालैण्ड	– फकीम – रंगापहर – पुलियबज्ज (Puliebadze)	
मेघालय	– नोंगखैलम – नरपुह – सिजू – भागमारा पिचेर	
अरूणाचल-प्रदेश	– दिबांग – कामलंग – पक्के (Pakke) – केन (Kane) – मेहायो (Mehao) – ताल घाटी – बाज घोंसला (ईगल नेस्ट) – ईटानगर	– दिबांग अरूणाचल प्रदेश का सर्वप्रमुख वन्यजीव अभ्यारण्य है। इसे सन् 1992 में वन्यजीव अभ्यारण्य घोषित किया गया था। यहाँ पर मस्क डियर, लाल पांडा, एशियाई ब्लैक बियर, टाइगर आदि वन्य जीव संरक्षित किए गए हैं।
त्रिपुरा	– रोवा – गुमती – त्रिस्ता – सिपाहीजाला	– रोवा एक वन्यजीव अभ्यारण्य के साथ-साथ राष्ट्रीय उद्यान भी है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

- भारतीय वन अधिनियम-1927 ब्रिटिश काल में वृक्षों की कटाई को प्रतिबंधित करने के लिए लाया गया था। इस अधिनियम के तहत ग्रामीण वन क्षेत्रों को भी शामिल किया गया था।
- वन्य जीवों को प्रभावशाली संरक्षण प्रदान करने के लिए भारत सरकार ने वन्यजीव सुरक्षा अधिनियम, 1972 पास किया।
- वन (संरक्षण) अधिनियम-1980 भारत में वनों की कटाई तथा वनीय क्षेत्रों में मानवीय गतिविधियों को सीमित करता है।
- जैव-विविधता एक्ट-2002:- संसद में इस एक्ट को पारित करने का उद्देश्य भारत के जैव विविधता संसाधनों का न्यायासंगत उपयोग करना था।
- जनजाति और अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकार की मान्यता) अधिनियम-2006 वन में रहने वाली अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य परंपरागत लोगों के हितों को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

- राष्ट्रीय वन नीति-1998 का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण में स्थायित्व तथा वायुमंडल सहित परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखना है।
- राष्ट्रीय पर्यावरण नीति- 2006 के अन्तर्गत विकास तथा पर्यावरण संरक्षण के मध्य संतुलन स्थापित करना है।
- आर्द्रभूमियों तथा उनके संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग के लिए वर्ष 1971 में रामसर (ईरान) में सम्मेलन हुआ।
- जैव-विविधता की मॉनीटरिंग तथा मानवीय प्रभाव का आंकलन, आर्द्रभूमियों के संरक्षण के लिए कानूनों में सुधार, जैव विविधता के संरक्षण के लिए आर्थिक आधार की मजबूती तथा स्थानीय सहभागिता को प्रोत्साहित करना रामसर कन्वेंशन के प्रमुख लक्ष्य हैं।
- भारत ने वर्ष 1981 ई. में रामसर की सदस्यता प्राप्त की। भारत में अब तक 26 आर्द्रभूमि (रामसर लैंड) चिन्हित किए गए हैं।

जैवमंडल अगार/निचय (Biosphere Reserve)

जैवमंडल अगार अथवा निचय एक विशेष प्रकार का आरक्षित क्षेत्र होता है, जिसमें मानव एवं वन्यजीव समुदाय एक-दूसरे के साथ साहचर्यपूर्ण वातावरण में रहते हैं। किसी अगार क्षेत्र का निर्माण लाखों विविध प्रकार के जीवों, वनस्पतियों तथा अन्य तत्वों द्वारा होता है। यह उच्चकोटि की विविधता तथा स्थानीयता से समृद्ध क्षेत्र है। जैवमंडल अगार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यूनेस्को के मानव एवं जैवसमुदाय रिजर्व कार्यक्रम के अंतर्गत आते हैं।

जैवमंडल अगार की अवधारणा का उद्भव सन् 1968 में यूनेस्को द्वारा आयोजित बायोस्फियर सम्मेलन में हुआ था। यह अपने तरह का पहला अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था, जिसमें संसाधनों के उपयोग एवं उनके संरक्षण में संतुलन बनाए रखने की बात कही गई थी ताकि भविष्य में पोषणीय विकास या सतत् विकास (Sustainable development) की अवधारणा के सम्बंध में विचार-विमर्श किया जाए। यदि समग्रता में देखें, तो जैवमंडल निचय एक बहुआयामी संरक्षित क्षेत्र है, जिसका उद्देश्य विभिन्न प्रतिनिधि पारिस्थितिक तंत्रों में आनुवांशिक विविधता की रक्षा करना है। जैव संरक्षण मंडल की स्थापना यूनेस्को की 'मानव एवं जैव-मंडल योजना' (Man and Biosphere Programme) का भाग है, जिसका क्रियान्वयन 1972 के बाद किया गया। जैव संरक्षण मंडल के तीन मुख्य उद्देश्य हैं-

- पौधों, जन्तुओं एवं सूक्ष्म प्राणियों की विविधता की रक्षा,
- पारितंत्रीय संरक्षण एवं अन्य पर्यावरणीय आयामों पर शोध को प्रोत्साहन,
- शिक्षा, जागरूकता एवं प्रशिक्षण के लिए सुविधाओं का निर्माण।

जैवसंरक्षण मंडल संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र को समन्वित एवं समुच्चय के रूप में देखता है और इनका चयन सभी प्रकार के जैव प्रादेशिक पारिस्थितिक तंत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया गया है।

जैवमंडल निचय/अगार की संरचना

यूनेस्को द्वारा 1976 ई. में जैवमंडल निचय को निम्नलिखित तीन भागों में वर्गीकृत किया गया:-

कोर क्षेत्र (Core Area)

यह जैवमंडल निचय का वह भाग है जहाँ पर किसी प्रकार की आर्थिक अथवा सांस्कृतिक क्रिया की अनुमति नहीं होती है अर्थात् यह जैव विविधता के संरक्षण हेतु सबसे सुरक्षित क्षेत्र है। हालाँकि विशेष परिस्थिति अर्थात् गैरविनाशकारी शोध की अनुमति होती है। प्रत्येक जैवमंडल निचय में एक या एक से अधिक कोर क्षेत्र हो सकते हैं।

बफर क्षेत्र (Buffer Zone)

प्रायः कोर क्षेत्र को घेरते हुए या उससे संलग्न क्षेत्र, जिसका प्रयोग गहन पारिस्थितिक गतिविधियों से सम्बंधित सहकारी क्रियाकलापों के लिए किया जाता है, जिसमें पर्यावरणीय शिक्षा, मनोरंजन तथा व्यावहारिक व आधारभूत शोध शामिल होते हैं।

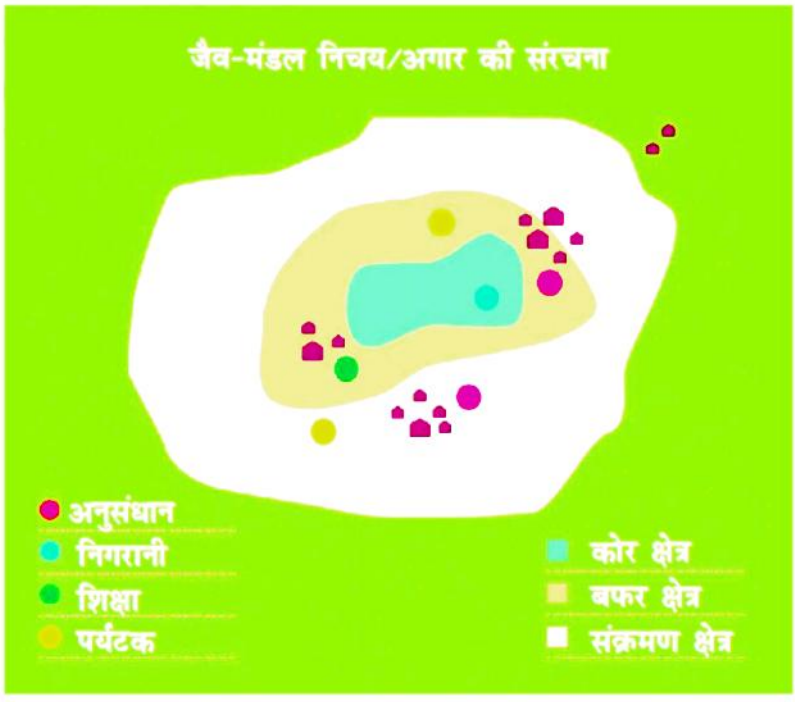

संक्रमण क्षेत्र (Transitional Zone)

बफर क्षेत्र को चारों ओर से घेरते हुए यह एक संक्रमण क्षेत्र या ट्रांजिशनल जोन होता है। यह किसी भी जैवमंडल का सबसे बाह्य क्षेत्र होता है। इसमें अनेक प्रकार की कृषि गतिविधियाँ, अधिवास एवं अन्य उपयोगी तत्व हो सकते है, जिनमें स्थानीय समुदाय, प्रबंधन एजेंसियाँ, वैज्ञानिक, गैर सरकारी संगठन, सांस्कृतिक समूह, आर्थिक रूचि एवं अन्य हितधारक (Stake holders) मिलकर क्षेत्र की सम्पोषणीयता के विकास एवं प्रबंधन के लिए कार्य करते हैं।

जैवमंडल अगार के कार्य (Functions of Biosphere Reserve)

- जैवमंडल अगार/निचय के अंतर्गत स्थानिक एवं कालिक स्तर पर मानव एवं प्रकृति द्वारा किए गए परिवर्तनों का विश्लेषण किया जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त पारिस्थितिकी तंत्रों, भूमि, प्रजातियों एवं प्रजननिक विविधताओं के संरक्षण को सुनिश्चित किया जा सकता है। जैवमंडल अगार स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक मुद्दों से सम्बंधित संरक्षण एवं विकास के लिए शोध, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि को संपादित करने का प्लेटफॉर्म प्रदान करता है।
- स्थानिक अर्थव्यवस्था के उस पहलू को प्रोत्साहित करना, जो सांस्कृतिक, सामाजिक एवं पारिस्थितिकी दृष्टि से पोषणीय हो। वस्तुतः जीवमंडल निचय का उद्देश्य भूमि, ताजे जल एवं सागरीय जल तथा जीवित संसाधनों के एकीकृत प्रबंधन को प्राप्त करना है। इससे जैव विविधता को पोषणीय विकास के आधार पर जैव क्षेत्रीय (Bioregional) योजना को अपनाकर बढ़ाया जा सकता है।

जैवमंडल निचय/अगार के लाभ

जैवमंडल निचय का महत्त्व प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में देखा जा सकता है। जैवमंडल निचय का प्रत्यक्ष लाभ जहाँ स्थानीय लोगों और प्राकृतिक संसाधनों को होता है, वहीं इसका परोक्ष लाभ वैज्ञानिकों, अनुसंधानकर्त्ताओं तथा वैश्विक समुदाय को प्राप्त होता है। जैवमंडल निचय पूर्णतया जैविक प्रयोगशालाओं का कार्य करते है जहाँ पर भूमि, जल एवं जैवविविधता का एकीकृत प्रबंधन होता है।

जैवमंडल निचय जैव-विविधता के संरक्षण तथा मानव द्वारा भूमि के पोषणीय उपयोग से युक्त प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र है। ये हमारे प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनसे न केवल स्थानीय समुदाय को, अपितु अर्थव्यवस्था का भी पोषणीय विकास होता है।

भारत का जैवमंडल निचय कार्यक्रम

जैवमंडल संरक्षण के लिए भारत ने व्यापक कदम उठाए हैं जो कि यूनेस्को तथा अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुकूल हैं। जैवमंडल अगार के अन्तर्गत हम राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव अभ्यारण्य, संरक्षित क्षेत्र तथा सामुदायिक क्षेत्रों को देख सकते हैं। वर्तमान (जनवरी, 2019 तक) में भारत में कुल 103 राष्ट्रीय उद्यान, 544 वन्यजीव अभ्यारण्य, 66 संरक्षित क्षेत्र तथा 26 सामुदायिक क्षेत्र हैं। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय वन्यजीव कार्यक्रम वर्ष 1986 ई. शुरू किया गया था। भारत में कुल 18 जीवमंडल निचय हैं, जिनमें से 11 को यूनेस्को द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है।

भारत के जीवमंडल निचयों के यूनेस्को के नेटवर्क में सम्मिलित होने के वर्ष

जीवमंडल के नाम	वर्ष
1. नीलगिरी	2000
2. मन्नार की खाड़ी	2001
3. सुन्दरवन	2001
4. नन्दा देवी	2004
5. नोकरेक	2009
6. पंचमढ़ी	2009
7. सिमलीपाल	2009

जीवमंडल के नाम	वर्ष
8. अचानकमार-अमरकंटक	2012
9. ग्रेट निकोबार	2013
10. अगस्त्यमलाई	2016
11. कंचनजंगा	2016

पवित्र उपवन एवं झीलें (Sacred groves & Lake's)

प्राचीन काल से ही भारत में ऐसी मान्यताएँ एवं प्रथाएं प्रचलित रही हैं जो प्रकृति संरक्षण पर बल देती हैं। इस संदर्भ में यहाँ पवित्र उपवनों एवं झीलों की अवधारणा भी विकसित हुई। IUCN के अनुसार, पवित्र उपवन किसी जनजातीय समुदाय, समाज एवं शासन द्वारा किसी पूजास्थल के इर्द-गिर्द उपस्थित प्राकृतिक विशेषताओं से समृद्ध क्षेत्र हैं। इनसे लोगों का सांस्कृतिक एवं धार्मिक जुड़ाव होता है। फलत: ऐसे उपवनों (पेड़-पौधों एवं जलीय उपागमों) के संरक्षण लिए स्वत:स्फूर्त शक्तियाँ कार्य करती हैं। इस क्षेत्र को लोक संस्कृति के लिए समर्पित कर दिया जाता है। किसी विशिष्ट क्षेत्र में कई पीढ़ियों से रह रहे लोगों ने अपनी विशिष्ट परम्परागत जीवन शैली का विकास कर लिया और उन पर आधुनिक प्रौद्योगिकी के संदर्भ में बाह्य प्रभाव कम ही पड़ता है। ऐसे जनसमूह को प्राय: जनजातियाँ, आदिवासी, मूलवासी कहते हैं। इन समाजों ने प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार का अपना स्थानीय तंत्र स्थापित किया हुआ है और वे उनके सम्पोषणीय तरीके से प्रयोग की विधि जानते हैं। यही कारण है कि अयनवर्ती क्षेत्रों में सम्पन्न जैव-विविधता और मानव समाज का हजारों वर्षों से बिना किसी क्षति के महत्त्वपूर्ण सहअस्तित्व बना हुआ है।

वर्तमान में भी भारत के ग्रामीण समाज में विभिन्न वृक्षों तथा प्रकृति पूजा के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। प्राय: समाज में पवित्र उपवनों को लेकर श्रद्धा इतनी गहरी होती है कि वे यहाँ से सूखी लकड़ियां तक नहीं उठाते हैं।

भारत में पवित्र वन के निम्नलिखित उदाहरण देखने को मिलते हैं:-

- उत्तर-पूर्वी हिमालयी क्षेत्र
- पश्चिमी मरुस्थलीय क्षेत्र
- पूर्वी घाट
- मध्य पठारी क्षेत्र
- तटीय क्षेत्र
- पश्चिमी घाट

भारत में पवित्र उपवन के स्थानिक नाम:-

संरक्षित क्षेत्र या रक्षित क्षेत्र किसी ऐसे क्षेत्र को कहते हैं जिससे उसके प्राकृतिक, पर्यावरणीय या सांस्कृतिक महत्त्व के कारण परिवर्तन या हानि से रक्षा की जा सके। संरक्षित समुद्री क्षेत्र, समुद्र का वह क्षेत्र होता है जहाँ मानव गतिविधियाँ और हस्तक्षेप, सख्ती से राष्ट्रीय उद्यानों, अभ्यारण्यों और जीवमंडल रिजर्व की तरह नियंत्रित की जाती हैं। स्थानीय सरकार, सरकारी प्राधिकरण या केन्द्रीय अधिकारियों द्वारा प्राकृतिक या ऐतिहासिक समुद्री संसाधनों के संरक्षण के लिए इन स्थानों को विशेष सुरक्षा दी जाती है।

बाह्य-स्थाने संरक्षण (Ex-Situ Conservation)

इसके अंतर्गत पादपों तथा जंतुओं का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवास से अलग एक विशेष स्थान पर किया जाता है। जंतु उद्यान, वनस्पति उद्यान तथा अन्य वन्य जीव सफारी पार्कों की स्थापना का उद्देश्य यही होता है कि जिन जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों के आवास क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाओं, प्रदूषण तथा आक्रामक प्रजातियों के प्रवेश आदि के कारण संकट उत्पन्न हो जाता है, उन्हें संरक्षित किया जा सके। ऐसे बहुत से जन्तु हैं जोकि वनों में विलुप्त हो गए हैं, लेकिन जंतु उद्यानों में सुरक्षित हैं। आजकल संकटोत्पन्न जातियों को परिबद्ध घेरे में रखने के बजाय बाह्य स्थाने (Ex-Situ Conservation) संरक्षण दिया जाता है। अब संकटग्रस्त जातियों के युग्मकों (गेमीट) को जीवित व जननक्षम स्थिति में निम्नताप परिरक्षण (क्रायोप्रिजर्वेशन) तकनीकों द्वारा लंबे समय तक परिरक्षित किया जा सकता है। अंडो को निषेचित (In-Vitro) किया जा सकता है और पादपों का ऊतकीय संवर्धन विधि द्वारा प्रवर्धन (प्रोपेगेशन) किया जा सकता है। व्यापारिक महत्त्व के पौधों के विभिन्न आनुवांशिक प्रभेदों (स्ट्रेन) के बीज लंबे समय तक बीज बैंक में रखे जा सकते हैं।

वनस्पति उद्यान (Botanical Gardens)

यह एक आधुनिक अवधारणा है जिसके अंतर्गत बहुत सी संकटापन्न एवं दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण एवं वृद्धि की व्यवस्था की जाती है। इन उद्यानों में जीवों तथा वनस्पतियों पर विभिन्न प्रकार के शोध आदि भी किए जाते हैं। राष्ट्रीय वन्यजीव कार्य योजना- 1983 के अनुसार, वनस्पति उद्यानों के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं-

- स्थानीय संकटापन्न प्रजातियों का पुनर्वास करना और उन्हें उनके मूल निवास स्थान पर संरक्षित वातावरण में रखना।
- विद्यार्थियों तथा स्थानीय लोगों में वन्य जीवों के सम्बन्ध में जागरूकता लाना तथा उनके महत्त्व को समझाना।
- अधिशेष प्रजातियों का आर्थिक उपयोग सुनिश्चित करना।

स्मरणीय है कि कोलकाता के निकट स्थित जगदीश चन्द्र बोस बोटेनिकल गार्डेन (शिवपुर) भारत का सबसे बड़ा बोटेनिकल गार्डेन है। यह सन् 1786 में अंग्रेजों द्वारा स्थापित किया गया था। यह लगभग 100 हेक्टेयर में फैला है, जिसमें 12000 से अधिक वन्य जीव प्रजातियाँ संरक्षण प्राप्त किए हुए हैं।

भारत के प्रमुख वनस्पति उद्यान

चिड़ियाघर (Zoo)

बाह्य-स्थाने संरक्षण (Ex-Situ Conservation) के तहत चिड़ियाघर वह स्थान है जहाँ दुर्लभ एवं संकटग्रस्त पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवों को उनके मूल स्थान से पृथक कृत्रिम आवास क्षेत्र में रखा जाता है। स्मरणीय है कि वन्यजीव संरक्षण अधिनियम-1972 की धारा-38H के अंतर्गत देश में जंतु उद्यानों के विकास की व्यवस्था की गई है। यहाँ उनके प्रजनन और चिकित्सा आदि की भी व्यवस्था होती है। हालांकि चिड़ियाघर का निर्माण वन्य जीवों के संरक्षण के लिए किया गया और परन्तु धीरे-धीरे ये मनोरंजन तथा आकर्षण के केन्द्र बन गए।

ऑस्ट्रिया का वियना चिड़ियाघर सबसे पुराना मौजूदा चिड़ियाघर है। आमतौर पर चिड़ियाघर में वन्य जीवों को एक घेराव में रखा जाता है जिसे उनके प्राकृतिक आवास की ही तरह बनाने का प्रयास किया जाता है, परन्तु रात्रिचर जीवों के लिए विशेष प्रकार के आवासों का निर्माण किया जाता है जिनमें बाड़ बन्दी, आयरन रॉड से निर्मित पिंजरे इत्यादि शामिल होते हैं। कुछ चिड़ियाघरों में सीमित जानवरों को बड़े विस्तृत घेराव में रखा जाता है जिसमें पिंजरे के बजाय चारों ओर गहरी खाईयाँ निर्मित की जाती हैं।

चिड़ियाघर की तर्ज पर ही सफारी पार्क/शेर फार्म भी विकसित किए जाते हैं जिसमें आगंतुकों को उनके पास से गुजरने और समीप आने की अनुमति दी जाती है।

केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण (Central Zoo Authority)

भारत विश्व के उन चुनिंदा देशों में शामिल है जो विभिन्न पक्षी प्रजातियों के साथ जानवरों की दुर्लभ प्रजातियों को एक सुरक्षित आश्रय प्रदान करता है। जीव-जंतुओं तथा वनस्पतियों के संरक्षण के लिए यहाँ कई राष्ट्रीय उद्यानों का निर्माण करवाया गया है। इसके अलावा राज्यों में कई छोटे-बड़े चिड़ियाघर भी मौजूद हैं जिससे कि जीव सुरक्षा के साथ-साथ भारतीय पर्यटन को भी बढ़ावा मिल सके। इस कार्य के लिए भारतीय वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम- 1972 की धारा 38A के तहत केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण (CZA) की स्थापना की गयी है। यह भारत के सभी चिड़ियाघरों की गवर्निंग अथॉरिटी है और वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ जू एण्ड एक्वेरियम से भी सम्बन्धित है। यह चिड़ियाघरों में वन्यजीवों के रख-रखाव, उनके आवास सम्बन्धी मानकों का निर्धारण तथा अनुपालन सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त यह चिड़ियाघर को उनके विकास कार्यों के मूल्यांकन के आधार पर पहचान देता है। भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण जंतु उद्यान इस प्रकार हैं-

- राष्ट्रीय जूलॉजिकल पार्क - नई दिल्ली
- इंदिरा गाँधी जूलॉजिकल पार्क - विशाखापत्तनम
- मार्बल प्लेस जू - कोलकाता
- नेहरू जूलॉजिकल पार्क - हैदराबाद
- एलेन फॉरेस्ट जू - कानपुर
- अलीपोर जूलॉजिकल गार्डेन - कोलकाता
- राजीव गाँधी जूलॉजिकल पार्क - पुणे

- मैसूर जू – मैसूर
- लखनऊ जू – लखनऊ
- नंदनकानन जूलॉजिकल पार्क – भुवनेश्वर
- मद्रास मगरमच्छ बैंक ट्रस्ट – चेन्नई
- श्री वेंकटेश्वर जूलॉजिकल पार्क – तिरुपति

जीन बैंक (Gene Bank)

बाह्य-स्थाने संरक्षण के अंतर्गत जीन बैंकों की स्थापना की जाती है। जीन बैंक एक प्रकार का जीव कोष है, जहाँ आनुवांशिक पदार्थों को सुरक्षित रखा जाता है। जीन बैंकों में फसलों की अलग-अलग प्रजातियों के बीजों को इकट्ठा कर एक निश्चित तापमान पर उन्हें संग्रहित किया जाता है। वृक्षों के जीन को फ्रीज कर संरक्षित किया जाता है। जंतुओं के वीर्य और अंडों को जैविकीय फ्रीज में रखा जाता है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें प्रयोग में लाया जा सके।

भारत में राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (1996 ई. में स्थापित), नई दिल्ली-फसल के पौधों की जंगली स्पीशीज तथा उगाई जाने वाली किस्मों के बीजों को संरक्षित रखता है।

स्थान	राज्य	वनस्पति उद्यान
गुवाहाटी	असम	– असम राज्य जू-कम बोटेनिकल गार्डेन
शिवपुर	पश्चिम बंगाल	– आचार्य जगदीश चन्द्र बोश भारतीय, बोटेनिकल गार्डेन,
उत्तरीय बंगाल विश्वविद्यालय	पश्चिम बंगाल	– गार्डेन ऑफ मेडिकल प्लांट
दार्जिलिंग	पश्चिम बंगाल	– लार्ड्स बोटेनिकल गार्डेन
नोएडा	उत्तर प्रदेश	– बोटेनिकल गार्डेन ऑफ इंडियन रिपब्लिक
सहारनपुर	उत्तर प्रदेश	– सहारनपुर बोटेनिकल गार्डेन
अलीगढ़	उत्तर प्रदेश	– अलीगढ़ बोटेनिकल गार्डेन
पटना	बिहार	– संजय गाँधी जैविक उद्यान
हैदराबाद	तेलंगाना	– एन.टी.आर. गार्डेन
सारंगपुर	चंडीगढ़	– सारंगपुर बोटेनिकल गार्डेन
सपुतारा	गुजरात	– वघाई बोटेनिकल गार्डेन
लौटेलिम	गोवा	– द गार्का ब्रान्का आयुर्वेदिक बोटेनिकल गार्डन
बैंगलुरु	कर्नाटक	– कूबोन पार्क
मैसूर	कर्नाटक	– रीजनल म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री
बैंगलुरु	कर्नाटक	– लालबाग बॉटेनिकल गार्डेन
तिरूअनंतपुरम	केरल	– वेल्लायणी कृषि विद्यालय बोटेनिकल गार्डेन
चेन्नई	तमिलनाडु	– समोमी पुंगा
झाँसी	उत्तर प्रदेश	– झाँसी बोटेनिकल गार्डेन
मुम्बई	महाराष्ट्र	– जिजामाता उद्यान
वत्स्रपुर	गुजरात	– आर.बी. बोटेनिकल गार्डेन एंड एमुस्मेन्ट

जबकि हरियाणा के करनाल में स्थित राष्ट्रीय पशु संसाधन ब्यूरो (The National Bureau of Animal Genetic Resources) में पालतू पशुओं के आनुवांशिक पदार्थों का रख-रखाव किया जाता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो लखनऊ में मछलियों के आनुवांशिक पदार्थों का संरक्षण किया जाता है।

क्रायोप्रिजर्वेशन (Cryopreservation)

यह विशेषरूप से कायिक संवर्धित फसलों तथा पशुओं के संरक्षण के लिए लाभदायक है। क्रायोप्रिजर्वेशन में जैविक पदार्थों को द्रव नाइट्रोजन में अत्यंत निम्न तापमान (-196°C) पर रखा जाता है तथा सभी उपापचयी प्रक्रियाओं एवं क्रियाकलापों को आवश्यक रूप से निलंबित रखा जाता है। क्रायोप्रिजर्वेशन का अनुप्रयोग विभाज्योतक, युग्मनजीय एवं कायिक भ्रूण, परागण, प्रोटोप्लास्ट की कोशिकाओं तथा अनेक पादप स्पीशीजों के संवर्धन में सफलता के साथ किया जा चुका है।

आण्विक स्तर पर संरक्षण (DNA स्तर पर)

उपरोक्त के अतिरिक्त, आण्विक स्तर पर जर्मप्लाज्म संरक्षण अब संभव है तथा इसने अपनी ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है। क्लोन DNA तथा DNA युक्त पदार्थ अपनी मूल अवस्था में आनुवांशिक संरक्षण के लिए उपयोग किए जा सकते हैं। इसके अलावा, जीन बैंकों में संग्रहित मूल्यवान जीनोटाइप दर्शाने वाला अलाभकारी पदार्थ DNA लाइब्रेरी के स्रोतों के रूप में उपयोग किया जा सकता है, जहाँ से उपयुक्त जीन या जीनों के संयोजन की पुनर्प्राप्ति सुनिश्चित की जा सके।

संरक्षण के लिए भारतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय पहल

भारत ने वन्यजीव संरक्षण के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण पहलें की हैं। जिनके आधार पर विभिन्न जीव-जन्तुओं के संरक्षण तथा परिवर्धन का प्रयास किया गया है।

जैव-विविधता के संबंध में वैधानिक प्रयास इस प्रकार हैं-

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद-48(A)
- राष्ट्रीय नियम व कानून
- भारतीय वन अधिनियम-1927
- वन्यजीव सुरक्षा अधिनियम-1972
- वन संरक्षण अधिनियम-1980
- पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम-1986
- मत्स्यपालन अधिनियम-1897 व 1984
- जैव-विविधता अधिनियम-2002

भारतीय वन अधिनियम-1927 (Indian Forest Act-1927)

भारतीय वन अधिनियम- 1927 ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में वन क्षेत्र का संरक्षण तथा वन्य जीवों की सुरक्षा आदि उद्देश्य के लिए लाया गया था। इसके अतिरिक्त इस एक्ट में रिजर्व फॉरेस्ट को परिभाषित करने का भी प्रावधान है।

आरक्षित फॉरेस्ट (Reserved Forest)

इसके अंतर्गत केन्द्र अथवा राज्य द्वारा बनाए गये वन अधिनियम का उल्लंघन दण्डनीय होता है। इसमें सरकार की अनुमति के बिना किसी भी प्रकार की गतिविधि प्रतिबंधित होती है।

संरक्षित वन (Protected Forest)

संरक्षित वनों में आरक्षित वनों की अपेक्षा किसी भी प्रकार की क्रिया करना आसान होता है। हालांकि, सरकार द्वारा किसी वृक्ष अथवा भूमि पर आवश्यकतानुसार प्रतिबंध लगाया जा सकता है। इसके खनन, वन उत्पादों के निराकरण (Removal) आदि पर भी प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

ग्राम्य वन (Village Forest)

इसके अंतर्गत सरकार ग्रामीण समुदाय को वह जमीन दे सकती है जिस पर संरक्षित वन नहीं है। यह भूमि समुदाय द्वारा प्रयोग की जा सकती है। ग्रामीण वन को भारतीय वन अधिनियम-1927 के अंतर्गत अधिसूचित किया गया है। प्राय: यह ग्रामीण भूमि का चारागाह होता है।

Note

वर्ष 2018 में प्रारम्भ किया गया राष्ट्रीय बांस मिशन भारतीय वन अधिनियम-1927 में संशोधन करके लाया गया। जिसके तहत बांस को वृक्ष की श्रेणी से निकालकर घास की श्रेणी में रख दिया गया।

वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम–1972 [Wildlife (Protection) Act. 1972]

भारत सरकार ने देश के वन्य जीवन की रक्षा करने और प्रभावी ढंग से अवैध शिकार, तस्करी और वन्य जीवन तथा व्युत्पन्न उसके अवैध व्यापार को नियंत्रित करने के उद्देश्य से वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम लागू किया। इस अधिनियम को और अधिक सशक्त बनाने के लिए जनवरी, 2003 में संशोधन किया गया। जिसके तहत अपराधों के लिए सजा और जुर्मानों को और अधिक कठोर बना दिया गया। यह अधिनियम देश की पारिस्थितिकीय और पर्यावरण सुरक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से वन्य प्राणियों, पक्षियों और पादपों के संरक्षण के लिए तथा उनसे संबंधित विषयों को रेखांकित करने के लिए लाया गया है।

वन (संरक्षण) अधिनियम–1980 [Forest (Conservation) Act, 1980]

भारत में स्थित वनों के संरक्षण के लिए निर्मित यह अधिनियम, बिना सरकार की पूर्व अनुमति के वनों में प्रवेश को निषिद्ध करता है। वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 का मुख्य उद्देश्य वनों को विनाश और वन-भूमि को गैर-वानिकी कार्यों में उपयोग से रोकना था। इस अधिनियम के प्रभावी होने के पश्चात् कोई भी वन भूमि केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना गैर वन भूमि या किसी भी अन्य कार्य के लिए प्रयोग में नहीं लाई जा सकती है। आबादी के बढ़ने तथा मानव जीवन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए वनों को काटना स्वाभाविक है। अत: ऐसे कार्यों (शहरी आवास तथा आधारभूत संरचना) की योजना बनाते समय वनों के काटने हेतु मार्गदर्शिकायें तैयार की गयी हैं जिससे वनों को कम से कम नुकसान हो। इन मार्गदर्शिकाओं या दिशा-निर्देशों में निम्नलिखित बिन्दुओं पर अधिक ध्यान दिया गया है-

- वनों की कटाई, जहाँ तक संभव हो रोकी जानी चाहिए।
- वन संबंधी योजनाएँ इस प्रकार हों ताकि वन संरक्षण को बढ़ावा मिले।
- पशुओं के चारागाहों को ध्यान में रखना चाहिए।
- आवश्यकता पड़ने पर कुछ समय के लिए वनों की कटाई पर रोक लगानी चाहिए, ताकि इन इलाकों में पुन: पेड़-पौधे उग सकें।
- पहाड़ों, जल क्षेत्रों/जलाशयों, ढलान वाली भूमियों पर वनों को पूरी तरह से संरक्षित किया जाना चाहिए।
- इस अधिनियम के अंतर्गत एक परामर्श समिति (Advisory Committee) के गठन का प्रावधान है, जो अनुदान अथवा वन संरक्षण से संबंधित किसी अन्य विषय के संबंध में (Section-2) सरकार का मार्गदर्शन करती है।

यह अधिनियम इस बात पर बल देता है कि वनों को राजस्व का स्रोत नहीं मानना चाहिए। यह राष्ट्रीय संपदा है जिसे देश एवं देश के लोगों के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम–1986 (Environment Protection Act-1986)

संयुक्त राष्ट्र का प्रथम मानव पर्यावरण सम्मेलन 5 जून, 1972 को स्टॉकहोम में संपन्न हुआ। इसी से प्रभावित होकर भारत ने पर्यावरण संरक्षण के लिए पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम- 1986 पास किया। यह एक विस्तृत अधिनियम है, जो पर्यावरण के समस्त विषयों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वातावरण में घातक रसायनों की अधिकता को नियंत्रित करना व पारिस्थितिकी तंत्र को प्रदूषण मुक्त रखने का प्रयास करना है। इसके अंतर्गत शामिल बिन्दु इस प्रकार हैं-

- पर्यावरण का संरक्षण एवं सुधार करना।
- मानव पर्यावरण के स्टॉकहोम सम्मेलन के नियमों को कार्यान्वित करना।
- पर्यावरण संरक्षण हेतु सामान्य एवं व्यापक विधि निर्मित करना।
- मानव, प्राणियों, जीवों, पादपों को संकट से बचाना।
- प्रचलित कानूनों के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण प्राधिकरणों का गठन करना व उनके क्रियाकलापों के बीच समन्वय स्थापित करना आदि।

इस अधिनियम के तहत पर्यावरण सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न करने वालों के लिए दण्ड का भी प्रावधान किया गया है। इसके द्वारा केन्द्र सरकार के पास ऐसी शक्तियाँ आ गई हैं जिनके द्वारा वह पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण व सुधार हेतु व्यापक कदम उठा सकने में सक्षम हो गयी है। इसके तहत केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण के गुणवत्ता मानक निर्धारित करने, औद्योगिक क्षेत्रों को प्रतिबंधित करने, दुर्घटना से बचने के लिए सुरक्षात्मक उपाय निर्धारित करने तथा हानिकारक तत्वों का निपटान करने, प्रदूषण के मामलों

की जाँच एवं शोध कार्य करने, प्रभावित क्षेत्रों का तत्काल निरीक्षण करने, प्रयोगशालाओं का निर्माण तथा जानकारी एकत्रित करने का कार्य सौंपा गया है।

इस अधिनियम की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पहली बार व्यक्तिगत रूप से नागरिकों के इस कानून का पालन न करने वाली फैक्ट्रियों के विरूद्ध रिपोर्ट दर्ज कराने का अधिकार प्रदान किया गया है।

राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम–1995 (National Environment Tribunal Act-1995)

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक दुर्घटनाओं एवं आपदाओं में मानव स्वास्थ्य, संपत्ति तथा पर्यावरण को क्षति होने की अवस्था में शीघ्र एवं प्रभावी क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करना है। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम में विभिन्न अवस्थाओं में क्षतिपूर्ति की भी व्यवस्था की गयी है, जैसे- दुर्घटना के दौरान मृत्यु, आंशिक या पूर्ण विकलांगता, सम्पत्ति की क्षति, सरकार द्वारा प्रभावित व्यक्ति को सहायता देने पर आया खर्च, जलीय पौधों, फसलों, सब्जियों, पेड़ों एवं उद्यानों सहित वनस्पतियों को हुई हानि तथा मृदा, वायु, जल, भूमि एवं पारिस्थितिकी सहित पर्यावरण को हुई हानि आदि की क्षतिपूर्ति।

जैव–विविधता संरक्षण अधिनियम–2002

जैव-विविधता संरक्षण हेतु केन्द्र सरकार ने 2002 में एक राष्ट्रीय जैव-विविधता संरक्षण क्रियान्वयन योजना शुरू की, जिसमें गैर सरकारी संगठनों, वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों तथा आम नागरिकों को भी शामिल किया गया। इसी प्रक्रिया में सरकार ने जैव-विविधता संरक्षण अधिनियम, 2002 पारित किया।

जैव-विविधता संरक्षण अधिनियम-2002 में शामिल किए गए प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं-

- जैव-विविधता का संरक्षण करना तथा उसे भावी पीढ़ियों के लिए बचा कर रखना।
- जैव संसाधनों तक पहुँच तथा इन संसाधनों का समान उपभोग।
- राष्ट्रीय जैव-विविधता अथॉरिटी तथा राज्य जैव-विविधता के अधिकार क्षेत्र के जैव संसाधनों संबंधित जानकारी के बारे में बायोडायवर्सिटी मैनेजमेन्ट कमिटी (BMCS) का परामर्श लेना।
- पर्यावरण व जैव-विविधता से संबंधित स्थानीय समुदायों के ज्ञान का आदर करना तथा उसकी सुरक्षा करना।
- जैव-विविधता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में संरक्षण एवं विकास के लिए जैव-विविधता धरोहर स्थल (Heritage Sites) घोषित करना।
- इस अधिनियम को लागू करने के लिए राज्य स्तर पर संगठनों अथवा निकायों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- सभी विदेशी लोगों/संस्थानों के लिए जैव संसाधनों/उनसे संबंधित ज्ञान का प्रयोग करने हेतु राष्ट्रीय जैव-विविधता अथॉरिटी की पूर्व अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है। भारतीय उद्योगों के लिए जैव संसाधनों को प्राप्त करने हेतु राज्य बायोडायवर्सिटी को सूचित करना अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो सम्बंधित कंपनी अथवा संस्थान पर राज्य बायोडायवर्सिटी बोर्ड प्रतिबंध लगाने हेतु अधिकृत है।
- जैव विविधता संरक्षण हेतु फंड जुटाना, आदि।

वन अधिकार अधिनियम–2006

वन अधिकार अधिनियम-2006, वन में रहने वाली अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य परंपरागत लोगों के हितों को ध्यान में रखकर निर्मित किया गया है। यह कानून वनों में रहने वाले लोगों के भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकारों से जुड़ा हुआ है जिनसे, औपनिवेशिक काल से ही उन्हें वंचित किया हुआ था। इसका उद्देश्य जहाँ एक ओर वन संरक्षण है, वहीं दूसरी ओर यह जगलों में रहने वाले लोगों को उनके साथ सदियों तक हुए अन्याय की भरपाई का भी प्रयास है। समग्रता में देखें, तो इसके तहत वन में रहने वाले लोगों को वन संसाधनों के उपयोग का अधिकार प्रदान किया गया है तथा वन प्रबंधन (Forest Managements), में स्थानीय भागीदारी सुनिश्चित किया जाना है। इसके अतिरिक्त विस्थापन की स्थिति में उनके पुनर्वास का भी प्रावधान निहित है।

अन्य प्रमुख कानून और नीतियाँ

कीटनाशक अधिनियम-1968 (Insecticide Act-1986)

यह अधिनियम मानव तथा पशुओं को जोखिम से बचाने के लिए कीटनाशकों के आयात, निर्माण, बिक्री, परिवहन, वितरण और उपयोग को विनियमित करने के दृष्टिकोण के साथ लागू किया गया था।

राष्ट्रीय वन नीति-1988 (National Forest Policy-1988)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वर्ष 1952 में पहली बार राष्ट्रीय वन नीति की घोषणा की गई। नीति के अनुसार, वनों से अधिकतम आय प्राप्त करना सरकार का मुख्य लक्ष्य हो गया। सरकार की वन नीति के कारण ही वर्ष 1952 से वर्ष 1981 के बीच कृषि फसलों के अंतर्गत क्षेत्र 1187.5 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 1429.4 लाख हेक्टेयर हो गया। कृषि फसलों के अंतर्गत क्षेत्र में 242 लाख हेक्टेयर की यह वृद्धि ग्रामीण अंचल में स्थित वनाच्छादित भूमि को वृक्षविहीन करके प्राप्त की गई। राष्ट्रीय वन नीति-1988 के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं-

- प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण।
- पारिस्थितिकीय संतुलन के संरक्षण और पुनरूत्थान द्वारा पर्यावरण स्थायित्व को बनाए रखना।
- वन संरक्षण हेतु व्यापक वृक्षारोपण और सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के माध्यम से वन और वृक्षों के आच्छादन में वृद्धि करना।
- नदियों, झीलों और अन्य जलाशयों के मार्ग क्षेत्र में मृदा अपरदन को नियंत्रित करना।
- वनोत्पादों के उचित उपयोग को प्रोत्साहन देना, आदि।
- इस वन नीति के तहत देश भर में कम से कम एक तिहाई भूमि पर वन लगाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। पर्वतीय इलाकों में मृदा अपरदन एवं भूमि अवनयन को रोकने तथा पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बनाए रखने के लिए कम से कम दो तिहाई भूमि पर वनों को बनाए रखने का प्रयत्न किया जाना है।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति-2006 (National Environment Policy-2006)

पर्यावरण की इस नीति के अंतर्गत निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित किया गया है-

- उन महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिकीय प्रणालियों, संसाधनों तथा प्राकृतिक व मानव निर्मित मूल्यवान धरोहरों की सुरक्षा तथा संरक्षण करना, जो जीवन रक्षक आजीविका/आर्थिक तथा मानव कल्याण की व्यापक संकल्पना के लिए अनिवार्य हैं।
- समाज के सभी वर्गों के लिए पर्यावरणीय संसाधनों तक पहुँच सुनिश्चित करना, ताकि निर्धन समुदाय जो आजीविका के लिए सर्वाधिक रूप से पर्यावरण संसाधनों पर निर्भर है, उसे इसका लाभ अवश्य मिल सके।
- आर्थिक व सामाजिक उद्देश्य से पर्यावरणीय सरोकारों को योजनाओं, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के रूप में एकीकृत करना।
- प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों के न्यूनीकरण के लिए आर्थिक उत्पादन की प्रति इकाई में प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग में कमी करके उनका सही प्रयोग सुनिश्चित करना।
- स्थानीय समुदायों, सार्वजनिक एजेंसियों, शैक्षणिक और अनुसंधान समुदायों, निवेशकों और बहुपक्षीय व द्विपक्षीय विकास भागीदारों के मध्य परस्पर लाभकारी बहुहितधारक सहभागिताओं के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण हेतु वित्त, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन कौशल, पारंपरिक ज्ञान तथा सामाजिक पूंजी आदि को शामिल करते हुए अधिक संसाधन प्राप्ति सुनिश्चित करना। इस पर्यावरण नीति का सार यह है कि जहाँ पर पर्यावरण का संरक्षण अनिवार्य है, वहीं पर यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि विकास का कार्य संसाधनों के ह्रास पर आधारित न होकर, संसाधनों के संरक्षण पर आधारित हो।

राष्ट्रीय जैव-विविधता कार्य योजना (National Biodiversity Action Plan- NBAP)

यह मौजूदा कानूनों, उनके क्रियान्वयन के तरीकों एवं कार्यक्रमों की पृष्ठभूमि में जैव-विविधता संरक्षण को होने वाले खतरों तथा बाधक तत्वों की पहचान करता है। इसके अतिरिक्त एनबीएपी को देश की पारिस्थितिकी, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक मूल्यों के अनुकूल होने की आवश्यकता है। भारत की सांस्कृतिक विविधता, जिसका जैव भौगोलिक तत्व के साथ घनिष्ठ संबंध है, जैव विविधता से संबंधित किसी भी योजना के लिए एक बड़ी चुनौती पैदा करती है।

नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल [NGT]

पर्यावरण से संबंधित किसी भी कानूनी अधिकार के प्रवर्तन तथा व्यक्तियों एवं संपत्ति की क्षति के लिए सहायता और क्षतिपूर्ति देने या उससे संबंधित या उससे जुड़े मामलों सहित, पर्यावरण संरक्षण एवं वनों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित मामलों के प्रभावी और तीव्र निपटान हेतु राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के अंतर्गत 18 अक्टूबर, 2010 को राष्ट्रीय हरित अधिकरण की स्थापना की गयी।

यह एक विशिष्ट निकाय है जो बहु-अनुशासनात्मक समस्याओं वाले पर्यावरणीय विवादों को संभालने के लिए आवश्यक विशेषज्ञता समूह से युक्त है। इस अधिकरण की कार्यवाही सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार बाध्यकारी नहीं होगी, परन्तु नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित की जाएगी।

पर्यावरण संबंधी मामलों में अधिकरण का समर्पित क्षेत्राधिकार तीव्र पर्यावरणीय न्याय प्रदान करेगा तथा उच्च न्यायालय में मुकदमेबाजी के भार को कम करने में सहायता करेगा। अधिकरण को आवेदनों या अपीलों के प्राप्त होने के 6 महीने के भीतर उनके निपटान का प्रयास करने का कार्य सौंपा गया है। आरंभिक समय में एन.जी.टी. के पाँच बैठक स्थलों को स्थापित किए जाने का प्रस्ताव है और यह अपनी पहुँच सुगम बनाने के लिए सर्किट व्यवस्था का अनुपालन करेगा। अधिकरण की बैठक का मुख्य स्थान नई दिल्ली होगा और साथ ही भोपाल, पुणे, कोलकाता तथा चेन्नई अधिकरण की बैठकों के अन्य चार स्थल होंगे।

स्मरणीय है कि एन.जी.टी. के निर्णयों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल एन.जी.टी. के वर्तमान अध्यक्ष हैं।

उपलब्धियाँ

- NGT ने अब तक लगभग 200 से अधिक मामलों का निपटान किया है।
- इसका नवीनतम निर्णय रेत खनन के विरूद्ध है। इसके अनुसार नदियों और समुद्री नितल से रेत का खनन करना अपराध है।
- इसका सबसे चर्चित निर्णय पॉस्को कम्पनी के विवाद के संदर्भ में था। इसने स्थानीय लोगों तथा वनों के संरक्षण के पक्ष में ओडिशा में 12 मिलियन टन वाले पॉस्को के स्टील संयंत्र के विरूद्ध निर्णय दिया था।

वन्य जीवों के संरक्षण की विशिष्ट परियोजनाएँ

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि वन्य प्राणियों की कई प्रजातियाँ अत्यधिक शिकार अथवा अन्य कारणों से लुप्त अथवा लुप्तप्राय हो गई हैं। इन प्रजातियों में से कुछ प्रजातियों के संरक्षण के लिए सरकार ने विशिष्ट परियोजनाएँ बनायी हैं जिनमें से प्रमुख परियोजनाएँ इस प्रकार हैं-

बाघ संरक्षण (Tiger Conservation)

भारत में बाघ संरक्षण परियोजना का 1 अप्रैल, 1973 को शुभारंभ हुआ है। इस योजना का उद्देश्य बाघों की गिरती संख्या को रोकना तथा पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने के लिए उनकी जनसंख्या में वृद्धि करना है।

भारत में बाघ संकटग्रस्त प्रजातियों में से एक है जिसकी कुल संख्या 2014 के आंकड़ों के हिसाब से 2226 है परंतु हाल ही में हुए गणना के अनुसार इनकी संख्या लगभग 2500 से अधिक हो गई है।

1 जुलाई 2014 को 'बोर' वन्यजीव अभ्यारण्य को महाराष्ट्र का छठा तथा देश का 47वाँ बाघ अभ्यारण्य एवं 'राजाजी' राष्ट्रीय पार्क को उत्तराखंड का दूसरा (प्रथम पर जिम कार्बेट) एवं देश का 48वाँ बाघ अभ्यारण्य अधिसूचित किया गया है। फरवरी, 2016 में 'असम' के ओरंग तथा 6 सितंबर, 2016 को अरूणाचल प्रदेश के कमलांग राष्ट्रीय पार्क को देश का क्रमशः 49वाँ एवं 50वाँ बाघ अभ्यारण्य घोषित किया गया। इस प्रकार देश अब तक देश में कुल 50 बाघ आरक्षित क्षेत्र हो चुके हैं जिनका क्षेत्रफल 71027 वर्ग कि.मी. है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.16 प्रतिशत है।

2015 में जारी बाघ गणना-2014 के अनुसार 'कर्नाटक तथा उत्तराखंड में बाघों की संख्या में ज्यादा वृद्धि हुई है राज्यों में कर्नाटक में बाघों की संख्या (406) इसके पश्चात् उत्तराखंड (340), म०प्र०(308), तमिलनाडु (229), महाराष्ट्र (190), असम (167), केरल (136) तथा उत्तर प्रदेश (117) बाघ है।

भारत में मध्य प्रदेश को 'टाइगर राज्य' के नाम से जाना जाता है क्योंकि यहाँ 8 बाघ रिज़र्व एवं कुल बाघों की संख्या का लगभग एक तिहाई बाघ पाये जाते हैं। 3 अप्रैल, 2016 को मध्य प्रदेश के सतना जिले के मुकुन्दपुर में विश्व के प्रथम 'सफेद बाघ रिज़र्व' का उद्घाटन किया गया।

भारत में प्रोजेक्ट टाइगर के तहत् कार्य कर रही कुछ महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ।

राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण	ग्लोबल टाइगर इनिशिएटिव
– यह वर्ष 2006 में MEFCC के अधीन स्थापित एक सांविधिक निकाय है।	– यह वैश्विक स्तर पर बाघ संरक्षण की पहल है जिसका शुभारंभ वर्ष 2008 में हुआ है।
– यह वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 में प्रावधानित कार्यों का निष्पादन करता है।	– इसका उद्देश्य जंगली बाघों को विलुप्त होने से बचाना है।
– वर्तमान में यह बाघ परियोजना, बाघ संरक्षण योजना, आदि जैसे महत्त्वपूर्ण बाघ संरक्षण पहलों का कार्यान्वयन करता है।	– वर्ष 2013 में, स्नो लेपर्ड को भी सम्मिलित करने के लिए इसका कार्य क्षेत्र बढ़ा दिया गया।

ग्लोबल टाइगर फोरम	संरक्षण आक्षस्त बाघ मानक
– यह एक अंतर-सरकारी अंतर्राष्ट्रीय निकाय है। – इसका उद्देश्य बाघों की रक्षा के लिए वैश्विक अभियान आरंभ करने के इच्छुक देशों के सदस्यों के साथ स्थापित किया गया है।	– यह बाघ संरक्षण प्रबंध का एक नया साधन है। – यह मानदंडों का समुच्चय है जो बाघ स्थलों द्वारा प्रबंधन से बाघ संरक्षण की सफलता के संबंध में जाँच करने की अनुमति प्रदान करता है। – यह TX2 कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण भाग है।

भारत के प्रमुख प्रोजेक्ट टाइगर अभ्यारण्य

क्रमांक	बाघ अभ्यारण्य	राज्य
1.	नागार्जुन सागर- श्री शैलम	तेलंगाना
2.	मानस बाघ अभ्यारण्य	असम
3.	काजीरंगा बाघ अभ्यारण्य	असम
4.	नामेरी बाघ अभ्यारणय	असम
5.	नामदफा बाघ अभ्यारण्य	अरूणाचल प्रदेश
6	पाखबुई बाघ अभ्यारण्य	अरूणाचल प्रदेश
7.	वाल्मीकि बाघ अभ्यारण्य	बिहार
8.	इंद्रावती बाघ अभ्यारण्य	छत्तीसगढ़
9.	गुरू घासीदास राष्ट्रीय पार्क	छत्तीसगढ़
10.	पलामू बाघ अभ्यारण्य	झारखंड
11.	बाँदीपुर बाघ अभ्यारण्य	कर्नाटक
12.	नागरहोल बाघ अभ्यारण्य	कर्नाटक
13	भद्रा बाघ अभ्यारण्य	कर्नाटक
14.	पेरियार बाघ अभ्यारण्य	केरल
15.	अन्नामलाई परामिबकुलम	केरल-तमिलनाडु
16.	बांधवगढ़ बाघ अभ्यारण्य	मध्य प्रदेश
17.	बोरी-सतपुड़ा बाघ अभ्यारण्य	मध्य प्रदेश
18.	कान्हा बाघ अभ्यारण्य	मध्य प्रदेश
19.	पन्ना बाघ अभ्यारण्य	मध्य प्रदेश
20.	पेंच बाघ अभ्यारण्य	महाराष्ट्र
21.	तदोबा-अंधारी बाघ अभ्यारण्य	महाराष्ट्र
22.	सह्याद्रि बाघ अभ्यारण्य	महाराष्ट्र
23.	डंपा बाघ अभ्यारण्य	मिजोरम
24.	सिमलीपाल बाघ अभ्यारण्य	उड़ीसा

क्रमांक	बाघ अभ्यारण्य	राज्य
25.	सुनावेदा बाघ अभ्यारण्य	उड़ीसा
26.	रणथम्भौर बाघ अभ्यारण्य	राजस्थान
27.	सरिस्का बाघ अभ्यारण्य	राजस्थान
28.	कालकड़-मुंडांथुरई बाघ अभ्यारण्य	तमिलनाडु
29.	मुदुमलाई राष्ट्रीय पार्क	तमिलनाडु
30.	दुधवा राष्ट्रीय पार्क	उत्तर प्रदेश
31.	पीलीभीत बाघ अभ्यारण्य	उत्तर प्रदेश
32.	जिम कॉबैट राष्ट्रीय पार्क	उत्तराखंड
33.	बुक्सा बाघ अभ्यारण्य	पश्चिम बंगाल
34.	सुंदरवन बाघ अभ्यारण्य	पश्चिम बंगाल
35.	सत्कोसिया बाघ अभ्यारण्य	उड़ीसा
36.	अचानकमार बाघ अभ्यारण्य	छत्तीसगढ़
37.	संजय दुबरी राष्ट्रीय पार्क	मध्य प्रदेश
38.	बन्नेरघट्टा बाघ अभ्यारण्य	कर्नाटक
39.	डांडेली-अनासी बाघ अभ्यारण्य	कर्नाटक
40.	उदंती एवं सीतानदी बाघ अभ्यारण्य	छत्तीसगढ़
41.	रातापानी बाघ अभ्यारण्य	मध्य प्रदेश
42.	मेलघाट बाघ अभ्यारण्य	महाराष्ट्र
43.	अमानगढ़ बाघ अभ्यारण्य	उत्तर प्रदेश
44.	सत्यमंगलम बाघ अभ्यारण्य (2013)	तमिलनाडु
45.	मुकंद्रा हिल्स (2013)	राजस्थान
46.	नावेगाँव-नागजिरा टाइगर (2013)	महाराष्ट्र
47.	बोर बाघ अभ्यारण्य (2014)	महाराष्ट्र
48.	राजाजी बाघ अभ्यारण्य	उत्तराखंड
49.	ओरंग बाघ अभ्यारण्य (2016)	असम
50.	कमलांग बाघ अभ्यारण्य (2016)	अरूणाचल प्रदेश

(Tx2) कार्यक्रम

- GST (ग्लोबल टाइगर इनिशिएटिव) के अंतर्गत बाघ संरक्षण पर सेंट पीटर्सबर्ग घोषणा को अपनाया गया है तथा ग्लोबल टाइगर रिकवरी प्रोग्राम या (Tx2) का समर्थन किया गया।
- इसका लक्ष्य उनके भौगोलिक क्षेत्रों में जंगली बाघों की संख्या को दोगुना करना है।
- यह कार्यक्रम WWF द्वारा 13 टाइगर रेंज कंट्रीज में कार्यान्वित किया जा रहा है।

सिंह (गिर) परियोजना (Gir Lion Project)

- विश्व में प्रसिद्ध एशियाई सिंहों की गणना भारत में की जाती है। अत: एशियाई सिंह के संरक्षण हेतु भारत का गिर (गुजरात) अभ्यारण्य सबसे प्रमुख है। गिर अभ्यारण्य को सन् 1973 को राष्ट्रीय अभ्यारण घोषित किया गया जिसमें गिर सिंह परियोजना को केंद्र सरकार द्वारा कार्यान्वित किया गया। गुजरात के जूनागढ़ जिले में स्थित यह उद्यान अब एक मात्र ऐसा उद्यान है जहाँ एशियाई शेर पाये जाते हैं।
- एशियाई शेर (पैन्थेरा लियो पर्सिका) को वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 की अनुसूची-1 और कन्वेंशन ऑन इंटरनेशनल ट्रेड इन एनडेंजर्ड स्पीशीज ऑफ फौना एण्ड फ्लोरा (CITES) की परिशिष्ट 1 में सम्मिलित किया गया है। इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (IUCH) में इसे लुप्तप्राय श्रेणी में सूचीबद्ध किया गया है।
- शेर, भारत में रहने वाली पाँच पैंथराइन कैट्स में से एक है जिसमें बंगाल टाइगर, भारतीय तेंदुआ, हिम तेंदुआ, और क्लाउडेड लेपर्ड आदि सम्मिलित हैं।
- इनकी जनसंख्या गुजरात के पाँच संरक्षित क्षेत्रों तक सीमित है:- गिर अभ्यारण्य, पनिया अभ्यारण्य, गिरा राष्ट्रीय उद्यान, गिरनार अभ्यारण्य, मिटियाला अभ्यारण्य। 14वीं शेर गणना-2015 (Lion census-2015) के अनुसार, भारत में एशियाई शेरों की संख्या में तेजी से वृद्धि देखी गई है। गिर अभ्यारण्य में शेरों की संख्या की बात की जाए तो 27% इजाफा हुआ है तथा विगत् वर्ष 2010 की तुलना में इनकी संख्या 411 से बढ़कर 523 हो गई है जिसमें से 109 वयस्क नर शेर, 201 वयस्क मादा शेर और 2013 शावक शामिल हैं।
- हाल ही में कैनाइन डिस्टेंपर वायरस (CDV) और किलनी वाहित बेबसिओसिस के कारण 20 दिनों में 23 एशियाई शेरों की मृत्यु हो गई, जिससे पुन: उनके संरक्षण की समस्या उत्पन्न हो गई है।

प्रोजेक्ट एलीफैंट (Project Elephant)

प्रोजेक्ट एलीफैंट 1992 में केंद्र सरकार द्वारा शुरू किया था। हाथी को वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 की अनुसूची 1 तथा CITES के परिशिष्ट 1 में स्थान दिया गया है जिसका लक्ष्य प्रमुख भू-दृश्य स्थलों प्रोजेक्ट एलीफैंट रेंज के रूप में हाथी और इसके पर्यावासों को संरक्षण देना है।

वर्तमान स्थिति में देश में हाथी रिजर्व की संख्या 30 है जो कि लगभग 69600 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल पर फैला है। भारत में हाथियों की संख्या लगभग 2200 है जो विश्व में उसकी कुल संख्या का 50 प्रतिशत है।

प्रोजेक्ट एलीफैंट को भारत सरकार द्वारा निम्नलिखित उद्देश्य के साथ शुरू किया गया था:-

- मानव-हाथी संघर्ष को कम करना।
- बंदी हाथियों का संरक्षण एवं कल्याण को सुनिश्चित करना।
- भारत में हाथी परियोजना को कई राज्यों में बढ़ावा देने हेतु लागू किया गया है। यह कर्नाटक, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड नागालैण्ड, उड़ीसा, तमिलनाडु, त्रिपुरा, मेघालय, असम, महाराष्ट्र, केरल, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश एवं अरूणाचल प्रदेश में लागू है। इस परियोजना के अंतर्गत निम्नलिखित गतिविधियों को सम्मिलित किया गया है:-

  -हाथियों के मौजूदा प्राकृतिक तथा प्रवास मार्गों को पारिस्थितिकीय पुनर्वास में बहाल करना।

  -बैसनिक एवं नियोजित प्रबंधन के विकास हेतु भारत में हाथियों के पर्यावासी तथा जंगली हाथियों को संरक्षण प्रदान करना।

  -संकट पूर्ण पर्यावासों में मानव-हाथी संघर्ष को कम करने हेतु हाथी पर्यावासों में मानव एवं घरेलू भंडारण गतिविधियों में कटौती कर संरक्षण को प्रोत्साहित करना।

  -प्राकृतिक कारणों से होने वाली हाथियों की मृत्यु को कम करना, उनके संरक्षण हेतु कठोर नियम पारित करना।

  -हाथियों के संरक्षण एवं प्रबंधन संबंधी समस्याओं का अनुसंधान करना।

  -पर्यावावरण अनुकूलन संबंधी समस्याओं का अनुसंधान करना।

हाथी संरक्षण हेतु उठाए गए कदम:-

हाथी को राष्ट्रीय विरासत पशु घोषित किया गया है। अत: इसके संरक्षण हेतु निम्नलिखित कदम उठाए गये हैं:-

हाथी गलियारे	हाथी मेरे साथ कार्यक्रम
– ये भूमि की संकरी पट्टीयाँ हैं जहाँ से हाथी आवागमन करते हैं।	– यह वाइल्ड लाइक ट्रस्ट ऑफ इंडिया (WIT) जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की संयुक्त पहल है।
– भारत में लगभग 100 हाथी गलियारों की पहचान की गई है।	– मंत्रिस्तरीय बैठक, मई, 2011 में औपचारिक रूप से अभियान एलीफैंट-8 के तहत् शुरू की गयी।
– अधिकांशत: गलियारे, छत्तीसगढ़, झारखण्ड उड़ीसा में मौजूद है।	– हाथी एवं उसके पर्यावास के बारे में शहरी एवं ग्रामीण जनसंख्या को संवेदनशील बनाना एवं जैव-विविधता के प्रति जागरूकता को बढ़ावा देना।

एशियन एलीफैंट अलायंस	माइक कार्यक्रम
– इसकी स्थापना जुलाई, 2005 में लंदन में हुई।	– इसकी स्थापना वर्ष 2003 में CITES हेतु पक्षकारों के सम्मेलन (COP) के संकल्प के माध्यम से की गई थी।
– यह एक अम्ब्रेला परियोजना है जिसके अन्तर्गत पाँच गैर-सरकारी संगठनों (एलीफैंट फैमिली, इंटरनेशनल फंड फॉर एनिमल वेलफेयर, आई.यू.सी.एन. वर्ल्ड लैंड ट्रस्ट तथा वाइल्ड ट्रस्ट ऑफ इंडिया) को सम्मिलित किया गया है।	– यह एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम है जो क्षेत्र आधारित संरक्षण प्रयासों की प्रभावशीलता की निगरानी करता है।
– इसका उद्देश्य भारत में हाथियों हेतु एक सुरक्षित भविष्य को सुनिश्चित करना है।	– इसका उद्देश्य अफ्रीका और एशिया में हाथियों की अवैध हत्याओं से संबंधित सूचना में प्रवृत्तियों का पता लगाना है।

एशियाई गैंडा (Asian Rhinos)

एक सींग वाला महान भारतीय गैंडा एक लोकप्रिय चिड़ियाघर जन्तु है। अत: विश्व में लगभग कुछ ही चिड़ियाघरों में भारतीय गैंडे मौजूद है। पर्यावास की क्षति तथा विखंडन एवं अवैध शिकार के कारण इनकी संख्या में काफी गिरावट दर्ज की गई है। सन् 1990 के आस-पास इनकी संख्या में लगभग 200 गैंडे थे तथा इन्हें IUCN के द्वारा संकटग्रस्त प्राणी के रूप में घाषित किया गया था। विश्व के 66 चिड़ियाघरों में इनकी संख्या 175 बताई जाती है। संरक्षण उपायों द्वारा इनकी संख्या में काफी वृद्धि हुई है। वर्तमान में 2850 से अधिक गैंडे भारत में मौजूद हैं।

ग्रेट वन-हार्न राइनो

एक सींग वाले गैंडे या भारतीय गैंडे नेपाल, भूटान, पाकिस्तान तथा भारतीय गैंडों की प्रजातियों से काफी बड़े होते हैं। यह भारत में असम राज्य के पोबीतोरा आरक्षित वन, ओरंग राष्ट्रीय उद्यान, लाओखोवा आरक्षित वन, मानस राष्ट्रीय उद्यान, काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान में पाये जाते हैं। वर्तमान में काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान एवं पोबीतोरा आरक्षित वन में एक सींग वाले गैंडों की लगभग 75% आबादी है।

इंडियन राइनो विजन 2020

इस कार्यक्रम को असम राज्य सरकार द्वारा बोडो स्वायत्तशासी परिषद् के साथ सक्रिय भागीदारी में WWF तथा यू.ए. फिश एंड वाइल्ड लाइफ सर्विस के सहयोग से शुरू किया गया है। इसका उद्देश्य 2020 तक असम में एक सींग वाले गैंडों की संख्या को बढ़ाकर 3000 तक करना है।

करैंट मुद्दा

हाल ही में द्वितीय एशियन राइनो रेंज कन्ट्रीज (भारत, भूटान, इंडोनेशिया, मलेशिया तथा नेपाल) बैठक में एशियाई गैंडों पर जारी नई दिल्ली घोषणा-पत्र-2019 पर हस्ताक्षर किए गए हैं।

इसका उद्देश्य एशियाई गैंडों की तीन प्रजातियाँ ग्रेट वन हॉर्न, सुमात्राई, जावाई के भविष्य को संरक्षित करने हेतु प्रत्येक चार वर्ष पर संयुक्त कार्यनीति की आवश्यकता का पुनर्मूल्यांकन करने हेतु इनकी आबादी की समीक्षा एवं संरक्षण करना।

जावाई तथा सुमात्राई गैंडों को वर्तमान में क्रिटिकली इंडेन्जर्ड के रूप में वर्गीकृत किया गया है। गैंडों की सभी प्रजातियों में सबसे छोटे तथा दो सींग वाले एक मात्र एशियाई गैंडे (सुमात्राई गैंडे) मलेशिया के जंगलों मे लुप्त हो चुके हैं।

हाल ही में असम सरकार ने काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान के बाहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के बीच में एक स्पेशल राइनो प्रोटेक्शन फोर्स का गठन किया है। जिसका उद्देश्य राइनो की हिंसक गतिविधियों को मद्देनजर रखते हुए उनके परिवारों में संरक्षण को बढ़ावा देना है।

ग्रेट इंडियन बस्टर्ड

यह क्षैतिज शरीर एवं लम्बे पैर वाला सर्वाधिक भारी पक्षियों में से एक है जो शुतुरमुर्ग की भाँती प्रतीत होता है। शुष्क और अर्द्ध शुष्क घास के मैदान, कंटीली झाड़ियाँ एवं रेगिस्तान जैसे क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनका सिंचित क्षेत्रों से लगाव बहुत कम होता है। यह मध्य भारत, पश्चिमी भारत, पूर्वी पाकिस्तान में पाये जाने के साथ भारतीय उपमहाद्वीप का स्थानिक पक्षी है। इसकी वर्तमान स्थिति की बात की जाए तो यह भारत के मात्र 6 राज्यों (गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक, मध्यप्रदेश तथा आंध्र प्रदेश) में पाया जाता है। एक अध्ययन से पता चला है कि ग्रेट इंडियन बस्टर्ड (GIB) की आबादी में निरंतर कमी आ रही है। वर्ष 1969 में उनकी संख्या जहाँ लगभग 1265 थी, वहीं सन् 2018 तक इनकी संख्या घटकर लगभग 200 तक हो गई है।

वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 की अनुसूची 1 में सूचीबद्ध और IUCN की रेड लिस्ट में क्रिटिकली एन्डेंजर्ड श्रेणी में शामिल है। इसे CITES के परिशिष्ट 1 में सूचीबद्ध किया गया है और इसे CMS (बॉन कन्वेशन) के अंतर्गत कवर करने की कोशिश जारी है।

भारत में पायी जाने वाली बस्टर्ड प्रजातियों में ग्रेट इंडियन बस्टर्ड, द लेसर फ्लोरिकन और द बंगाल फ्लोरिकन होडबारा भी बस्टर्ड परिवार से संबंधित है लेकिन साथ ही यह प्रवासी पक्षी भी है।

पारिस्थितिकी तंत्र में महत्त्व

ग्रेट इंडियन बस्टर्ड घासभूमि पर्यावास के लिए एक सूचक प्रजाति है और इस प्रकार परिवेश में इसका क्रमशः विलुप्त होना उसके ह्रास को कहीं न कहीं दर्शाता है। इसके विलुप्त हो जाने से घास भूमि का पारितंत्र अस्थिर हो जाएगा तथा महत्त्वपूर्ण जैव-विविधता के साथ-साथ काले हिरण तथा भेड़िया भी प्रभावित होंगे, जो ग्रेट इंडियन बस्टर्ड के साथ अपना पर्यावास साझा करते हैं।

संरक्षण के उपाय	बस्टर्ड रिकवरी कार्यक्रम
– ग्रेट इंडियन बस्टर्ड, जिसे लोकप्रिय रूप से 'गोडावन' के नाम से जाना जाता है, राजस्थान का राज्य पक्षी है।	– यह स्थानीय आजीविका को वस्टर्ड संरक्षण के साथ संबद्ध करने की अनुशंसा करता है।
– राज्य सरकार ने जैसलमेर में डेजर्ट नेशनल पार्क (DND) के संरक्षण के लिए 'गोडावन परियोजना' को आरंभ किया है।	– प्रभावी संरक्षण के लिए दिशा-निर्देश राज्य सरकारों को बस्टर्ड के प्रमुख प्रजनन क्षेत्रों की पहचान करने और उन्हें मानवीय व्यवधान से दूर रखने हेतु निर्देशित करता है।
– यह पर्यावरण, वन और जलवायु मंत्रालय के वन्यजीव पर्यावासी के समेकित विकास के अंतर्गत रिकवरी कार्यक्रम की प्रजातियों में से एक है।	– दिशा-निर्देश सड़कों, हाइटेंशन विद्युत खंभों, गहन कृषि, पवन ऊर्जा जनरेटर और विनिर्माण के लिए अवसंरचना विकास और भूमि उपायों में परिवर्तन पर प्रतिबंध का सुझाव देते हैं।

गंगा डॉल्फिन

गंगा डॉल्फिन जलीय पारितंत्र के विशाल जीवों में से एक स्तनधारी जीव है। यह भारत-बांग्लादेश के गंगा-ब्रह्मपुत्र-मेघना तथा कर्णफुली-सांगु नदी तंत्र में पायी जाती है। गंगा डॉल्फिन विश्व में स्वच्छ जल में पाये जाने वाली डॉल्फिन की चार प्रजातियों में से एक है। इसकी अन्य प्रजातिया चीन की यांगत्जी नदी डॉल्फिन, सिन्धु नदी (पाकिस्तान) की भूलन और लैटिन अमेरिका की अमेजन नदी बोटो डॉल्फिन है। इसका पर्यावास प्रायः प्रवाहित स्वच्छ एवं कम लवणीय नदी जल है जिनका समुद्र में प्रवेश न के बराबर होता है। एक पतली लम्बी थूथन, गोल आकार का पेट तथा बड़े पंख इस स्तनधारी जीव की विशेषता है। जल के अंदर साँस न ले पाने की वजह से यह सतह पर हर 5 मिनट से 2 मिनट पर आती है तथा एक विशिष्ट ध्वनि को प्रदर्शित करती है। अतः इस विशेषता के कारण इसे स्थानीय भाषा में सुसु भी कहा जाता है।

भारत का राष्ट्रीय जलीय प्राणी होने के तहत सरकार ने वर्ष 2017 में इसे गैर-मानव व्यक्ति का दर्जा प्रदान किया है तथा वन्यजीव

संरक्षण अधिनियम, 1972 के अंतर्गत अनुसूची-I के तहत संरक्षण प्रदान किया गया है।

नदी जल तंत्र में डॉल्फिन की उपस्थिति एक स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र की परिचायक है। नदी जलतंत्र में खाद्य श्रृंखला में डॉल्फिन शीर्ष पर है। इसलिए पर्याप्त संख्या में इसकी उपस्थिति नदी तंत्र की उच्च जैव विविधता का प्रतीक है और यह पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बनाए रखने में सहायक है।

पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा गंगा डॉल्फिन (2010-2020) संरक्षण कार्य योजना तैयार की गई है:-

- डॉल्फिन के सघन संरक्षण के लिए संभावित स्थलों का सीमांकन किया जाना चाहिए।
- गांगेय डाल्फिन आबादी वाले राज्यों में क्षेत्रीय डाल्फिन संरक्षण केन्द्र होना चाहिए।
- प्लास्टिक, नायलॉन मोनोफिलामेंट वाले मत्स्य गिलनेट्स के उपयोग पर प्रतिबंध स्थापित करना।
- भारत, नेपाल तथा बांग्लादेश के मध्य सीमा पार संरक्षण क्षेत्र होना चाहिए।

राष्ट्रीय डॉल्फिन अनुसंधान केन्द्र (MDRC):- यह भारत एवं एशिया का प्रथम केन्द्र है जिसके अंतर्गत संकटग्रस्त स्तनपायी प्रजाति की रक्षा हेतु संरक्षण संबंधी प्रयासों एवं अनुसंधानों को सुदृढ़ बनाना है।

राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन:- यह गंगा नदी डॉल्फिन संरक्षण कार्य योजना को बढ़ावा प्रदान करता है तथा क्षमता निर्माण, जागरूकता उत्पन्न करने के लिए विभिन्न स्थानों पर गंगा नदी डॉल्फिन संरक्षण, समन्वय को स्थापित करता है। गंगा नदी बेसिन जैव विविधता संरक्षण को प्रोत्साहन देना इसके अन्तर्गत एक प्रमुख कार्य है।

अध्याय
8

पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रबंधन
Environment Pollution and Management

मानव अपने उद्‌भव काल से ही प्रकृति पर निर्भर रहा है। मानव सभ्यता का जैसे-जैसे विकास होता गया, वैसे-वैसे उसकी आवश्यकताएं भी बढ़ती गयीं। इसी क्रम में मानव ने अपनी अतृप्त भौतिकतावादी अभिलाषाओं के कारण प्रकृति का अंधा-धुन्ध विदोहन करना प्रारम्भ कर दिया। 18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने उपभोक्तावादी संस्कृति को न केवल तीव्र कर दिया, अपितु ऐसे उपागमों को जन्म दिया, जो आज स्वयं मानव अस्तित्व को संकट में डाल रहे हैं। औद्योगीकरण, शहरीकरण, यातायात साधनों का विकास तथा परमाणु ऊर्जा उत्पादन आदि ने जहाँ एक ओर मानव जीवन को अधिक सरल व सुविधाजनक बनाया है, वहीं दूसरी ओर प्रदूषण के रूप में एक गंभीर समस्या को भी उत्पन्न किया है। इस प्रदूषण रूपी दानव ने पर्यावरण संतुलन को विरूपित करने का कार्य किया है। फलतः वायु, जल, मृदा आदि सभी प्रदूषण की चपेट में आ गए हैं।

पर्यावरण प्रदूषण हवा, जल या मृदा के ऐसे किसी भी प्रकार के भौतिक, रासायनिक या जीव वैज्ञानिक परिवर्तन का द्योतक है, जो जीवित जीवों के लिए हानिकारक हैं। अतः प्रदूषण का तात्पर्य-जैवमंडल के किसी भी अवयव में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिवर्तन से है, जो जीवित अवयवों के लिए, विशेष रूप से मानव के लिए अवांछित है। वस्तुतः पर्यावरण के किसी भी तत्व में होने वाला अवांछनीय परिवर्तन, जिससे जीव-जगत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, प्रदूषण कहलाता है।

प्रदूषक (Pollutant)

ऐसे कारक, जो प्रदूषण की दशाएं उत्पन्न करते हैं, प्रदूषक कहलाते हैं। अतः प्रदूषण के अन्तर्गत वह कोई भी भू-रासायनिक या रासायनिक पदार्थ, जैविक अवयव या इसके उत्पाद या भौतिक कारक, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव द्वारा पर्यावरण में इतनी मात्रा में छोड़े जाते हैं कि उनका विपरीत व हानिकारक प्रभाव होता है, शामिल हैं। प्राथमिक प्रदूषकों में कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2), सल्फर डाईऑक्साइड (SO_2), नाइट्रिक ऑक्साइड (NO), नाइट्रोजन डाईऑक्साइड आदि आते हैं, जबकि द्वितीयक प्रदूषकों में सल्फर ट्राइऑक्साइड (SO_3), सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4), नाइट्रिक अम्ल (HNO_3), हाइड्रोजन परॉक्साइड (H_2O_2) जैसे प्रदूषक आते हैं।

प्रदूषकों की सम्पूर्ण क्रियाविधि को हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं-

- प्रदूषण की अंतर्क्रियायें (अन्य पदार्थों के साथ भौतिक एवं रासायनिक), अर्थात् प्रदूषकों के प्राथमिक एवं गौण प्रकारों का अन्तर समझना आवश्यक है। प्राथमिक प्रदूषक (Primary Pollutant) वे हैं, जिनका प्रभाव अपरिहार्य होता है, जबकि गौण प्रदूषक वे हैं, जो किसी अन्य प्रदूषक या पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।
- प्रदूषक का स्थायित्व अर्थात् उसका उस अवस्था में बने रहने की क्षमता, जो क्षति कारक हो।
- प्रदूषक की जीवन आयु अर्थात् वह कितनी अवधि तक सक्रिय रहता है।
- जाति-उद्‌भवन अर्थात् एक प्रदूषक द्वारा ग्रहण किए जाने वाले रूपों की संख्या। यह जितनी अधिक होगी, उतने ही अधिक तरीकों से प्रदूषक पर्यावरण के साथ क्रिया कर सकता है।
- प्रदूषण भार, पर्यावरण में पाई जाने वाली प्रदूषक की कुल मात्रा। इस संबंध में दो अवधारणाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम, क्रांतिक भार (Critical load), जो प्रदूषक की उस मात्रा का द्योतक है जो किसी पारिस्थितिक तंत्र की क्षतिग्रस्तता का पता लगाने से पूर्व आवश्यक होती है तथा द्वितीय, लक्षित भार (Targeted Load) जो प्रदूषक की वह मात्रा है, जो सहनीय या अनुमत (Permitted) है। लक्षित भार आम लोगों के बोध अथवा ज्ञान के परिवर्तन के साथ बदल सकता है।
- विसरण- किसी प्रदूषक के सम्पूर्ण पर्यावरण में आसानी से फैलने की क्षमता।
- जैवसंचयन की क्षमता- यह किसी प्रदूषक की किसी पर्यावरणीय क्षेत्र या किसी लक्ष्य पर टिके रहने की क्षमता का द्योतक है।

नियंत्रण की सहजता:- किसी प्रदूषक को समाप्त करके पर्यावरण को उससे मुक्त करना कितना आसान है? एक साधारण ठोस रिसाव को हटाना सबसे आसान है, तरल को उससे कम और रिसाव को लगभग असम्भव है। यहाँ कुछ गोपनीय मुद्दे भी होते हैं। उदाहरण के लिए, 1967 में जब पहली तेल टैंकर दुर्घटना हुई (सिसली द्वीप के निकट) तो यही सोचा गया कि इस रिसाव को आसानी

से नियंत्रित कर लिया जाएगा। परन्तु, दुर्भाग्यवश यह जल नहीं पाया और उसे डिटर्जेंट की सहायता से साफ करने के प्रयास ने जितनी अधिक समस्याएँ उत्पन्न की, इतनी तेल ने भी नहीं की थी।

प्रदूषक के प्रकार

उत्पति तथा स्रोत के आधार पर प्रदूषकों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है-

- प्राकृतिक प्रदूषक
- मानव निर्मित प्रदूषक

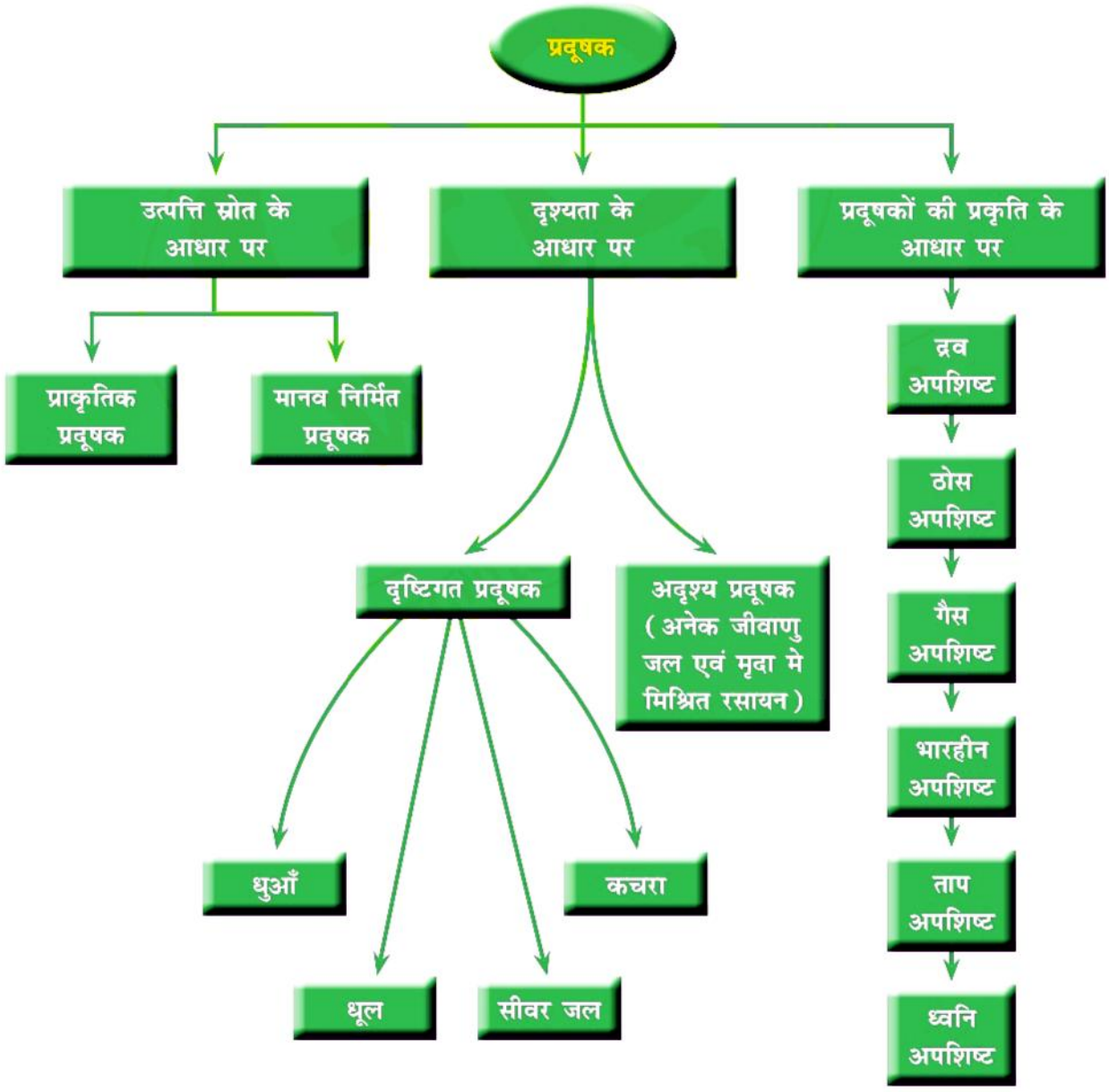

प्रदूषकों की प्रकृति एवं अवस्था के आधार को छः भागों में वर्गीकृत किया गया है-

- **द्रव अपशिष्ट:-** इनमें घरों से निकले जल, मलमूत्र व इसके साथ बहकर आये मृत कणों को शामिल किया जाता है। इस तरह के सान्द्रण में घुलित ऑक्सीजन से कार्बन पदार्थों का ऑक्सीकरण हो जाता है। विभिन्न उद्योग बड़ी मात्रा में अम्लीय एवं क्षारीय द्रव नि:सृत करते हैं।
- **ठोस अपशिष्ट (Solid Wasters):-** ठोस अपशिष्ट के अन्तर्गत घरेलू तथा औद्योगिक अपशिष्ट अर्थात् कूड़ा-करकट (Garbage) आते हैं। यह कचरा रसोई, मांसाहारों, डिब्बा, बोतल, उद्योग आदि से नि:सृत होता है। उद्योगों व घरों से प्राप्त राख, इमारतें तोड़ने के उपरान्त उपलब्ध मलबा, प्लास्टिक, मृत जन्तुओं के कंकाल, खनिज खानों से निकले अपशिष्ट आदि इनमें शामिल किए जाते हैं।
- **गैसीय अपशिष्ट (Gases Wastes):-** इसके अन्तर्गत जीवाश्म ईंधनों के दहन से कार्बन डाईऑक्साइड, सल्फर तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड आदि से निकलने वाले अपशिष्ट आते हैं।
- **भारहीन अपशिष्ट (Weightless Wastes):-** इनमें अदृश्य ऊर्जा अपशिष्ट को शामिल किया जाता है, जिनमें ताप, ध्वनि तथा रेडियोधर्मी अपशिष्ट समहित हैं।
- **ताप अपशिष्ट (Heat Wastes):-** इसमें विभिन्न औद्योगिक संस्थाओं से नि:सृत अत्यंत गर्म जल, द्रव अपशिष्ट, तप्त गैसें शामिल हैं।
- **ध्वनि अपशिष्ट (Noise Wastes):-** अवांछित ध्वनि इस वर्ग का प्रमुख अपशिष्ट है।

पारिस्थितिकी दृष्टिकोण से ओडम ने प्रदूषकों को दो वर्गों में विभाजित किया है-

- **जैव निम्नीकरणीय प्रदूषक (Biodegrdable Pollutants):-** ये ऐसे प्रदूषक हैं, जो जैविक जीवों विशेषकर वियोजकों द्वारा उपभोग कर लिए जाते हैं अथवा किन्हीं प्राकृतिक पदार्थों (जैसे CO_2 एवं जल) में तोड़ दिए जाते हैं, उदाहरण के लिए, घरेलू मल-जल, अन्न, शाक व फलों के अपशिष्ट आदि। इनका अनुपात विघटन दर से अधिक होने पर ये प्रदूषण का कार्य करने लगते हैं।
- **अविघटनीय प्रदूषक (Non-Degradable Pollutants):-** ऐसे प्रदूषक, जो सूक्ष्मजीवों द्वारा उपभोग नहीं किए जाते या अन्य प्राकृतिक पदार्थों में नहीं तोड़े जाते, उन्हें जैव-अनिम्नीकरणीय प्रदूषक कहते हैं। उदाहरण के लिए, प्लास्टिक एवं उद्योगों व कृषि में प्रयुक्त अनेक रसायन; जैसे- डी.डी.टी.। ये प्राकृतिक रूप से पारिस्थितिक तंत्र में चक्रित नहीं होते। ऐसे प्रदूषक न सिर्फ एकत्रित या संग्रहीत होते हैं, बल्कि जीव वैज्ञानिक रूप से आहार शृंखला में परवर्ती गतिशीलता के साथ एवं जीव-वैज्ञानिक रसायनों के साथ और वर्द्धित हो जाते हैं।

वायु प्रदूषण

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, वायु प्रदूषण की परिभाषा ऐसी दशा के रूप में की जाती है, जिसमें बाह्य (Outdoor) परिवेशी वायुमंडल में ऐसे पदार्थों का संकेन्द्रण पाया जाता है जो मानव एवं उसको घेरे हुए पर्यावरण के लिए हानिकारक हैं। यद्यपि वायु प्रदूषण मानव द्वारा अग्नि की खोज के साथ ही प्रारम्भ माना जाता है, परन्तु 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में घटित औद्योगिक क्रान्ति ने इसको बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

साधारण शब्दों में यदि देखें, तो वायुमंडल में गैसों का एक निश्चित अनुपात होता है, परंतु बाह्य पदार्थों या गैसों के हस्तक्षेप से यह अनुपात असंतुलित हो जाता है, जिसे वायु प्रदूषण कहा जाता है। वायुमंडल अनेक गैसों का मिश्रण होता है। इसमें 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत ऑक्सीजन, 0.9 प्रतिशत आर्गन आदि प्रमुख गैसें हैं।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

- पृथ्वी की पारिस्थितिकी के भौतिक और जैविक संघटकों का संदूषण इस सीमा तक कर देना कि सामान्य पर्यावरणीय प्रक्रिया प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो जाए, प्रदूषण कहलाता है।
- पर्यावरण में मौजूद अवांछित संघटक (संदूषण) की उपस्थिति प्राय: अपशिष्टों के कारण होती है।
- सीसा (Pb) एक भारी धातु और न्यूरो टॉक्सिन है जो पर्यावरण में प्राकृतिक तौर पर पाया जाता है।
- रेडियोन्युक्लाईड्स प्राकृतिक तौर पर मिट्टी और पत्थरों से मिलता है। इसमें अत्यधिक नाभिकीय ऊर्जा होती है। उदाहरण- थोरियम।
- रेडियोन्युक्लाईड्स मानव कोशिकाओं को नुकसान पहुंचाता है जिससे कैंसर रोग अथवा आनुवांशिक रोग होने का खतरा बढ़ जाता है।
- पारा (Hg) एक भारी धातु है जो प्राकृतिक तौर पर भी पायी जाती है, साथ ही रासायनिक उत्पाद; जैसे- अजैविक अथवा जैविक के रूप में भी पाया जाता है।
- मिथाइल पारे से मिनामाटा नामक रोग होता है जो कि एक गंभीर तंत्रिका संबंधी रोग है।
- क्रोमियम (Cr) एक प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली भारी धातु है जो आम तौर पर औद्योगिक कामों के लिए इस्तेमाल की जाती है।
- क्रोमियम हमारे श्वसन तंत्र एवं पाचन तंत्र को प्रभावित करता है जो कैंसर रोग कारक के रूप में भी जाना जाता है।
- ब्लैक कार्बन जीवाश्म ईंधन, लकड़ी और परम्परागत ईधनों के अपूर्ण दहन से निर्मित पार्टिकुलेट मैटर का प्रभावी जलवायु-तापन घटक है।
- ब्राउन कार्बन, कार्बनिक बायोमास के दहन के दौरान उत्पन्न होता है और ब्लैक कार्बन के साथ पाया जाता है।
- ब्लू कार्बन से तात्पर्य समुद्री घास, अंत: ज्वारीय लवणीय दलदल, मैंग्रोव वन जैसे तटीय पारिस्थितिक तंत्र में संग्रहीत और प्राच्छादित कार्बन से है।
- पेट कोक को "बॉटम ऑफ द बैरल" ईंधन के रूप मे वर्गीकृत किया गया है जो एक ठोस कार्बन समृद्ध पदार्थ है। यह तेल शोधन की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त होता है।
- जैवोपचारण प्रकृति में घटित होने वाली जैव निम्नीकरण प्रक्रिया का ही संवर्द्धन कर प्रदूषण को स्वच्छ करने की तकनीक है।

वायु प्रदूषण के कारण

कुछ स्रोतों के आधार पर वायु प्रदूषण को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

प्राकृतिक कारण:- लम्बी प्रक्रियाओं के पश्चात् दीर्घावधि से वायुमंडल में छोड़े जाने वाले रासायनिक प्रदूषक इस श्रेणी के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। वायु में प्राकृतिक प्रदूषण, आँधी-तूफान के दौरान उड़ती हुई धूल, ज्वालामुखी से निकला धुआँ व राख, वनों में लगी आग, दलदल व कीचड़ भरे क्षेत्रों में होने वाली जैविक व रासायनिक क्रियाओं के दौरान निकलने वाली गैसों व फसलों से उत्पादित परागकणों से होता है। हालांकि इनसे अपेक्षाकृत प्रदूषण काफी कम मात्रा में होता है, जिसका निदान भी प्राकृतिक रूप से ही कुछ समय पश्चात् स्वत: हो जाता है।

मानवीय कारण:-

वायु प्रदूषण मुख्य रूप से मानवीय स्रोतों से ही होता है। इन स्रोतों में हैं-

घरेलू कार्यों में प्रयुक्त ईंधन:- घरेलू कार्यों में प्रयुक्त होने वाले ईंधनों के दहन से कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाईऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड आदि गैसें उत्पन्न होती हैं, जो वायु को प्रदूषित करती हैं। वायु प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है- दहन की प्रक्रिया। मानव के हर क्रियाकलाप में ऊर्जा की आवश्यकता होती है और ऊर्जा के लिए किसी न किसी ईंधन की आवश्यकता होती है। दहन से अनेक गैसें तथा पदार्थ उत्पन्न होकर वायु को प्रदूषित करते हैं। इसके अन्तर्गत वाहनों में जीवाश्म ईंधनों का दहन, ताप विद्युत गृहों में दहन, कूड़े-कचरे के निस्तारण के लिए दहन तथा अन्य छोटे बड़े उद्योगों में दहन आदि शामिल हैं।

उद्योगों की चिमनी से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ:- मानव जनित प्रदूषण का दूसरा प्रमुख कारण औद्योगीकरण है। समग्र विकास की दृष्टि से नवीन उद्योगों को लगाना आवश्यक है, किन्तु उनसे निकलने वाले धुएं से सभी प्रकार की हानिकारक गैसें, हाइड्रोकार्बन अपशिष्ट व अन्य-हानिकारक पदार्थ, नियमित रूप से वायु में मिलकर प्रदूषण फैलाते हैं।